ऋषि दयानन्द

(जीवन गाथा)



दिसम्बर
१९६८

आर्यजनता का
प्रतिनिधि
प्रकाशन



"ओ३म्"

जन ज्ञान (मासिक)

●

नव युग प्रवर्तक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

प्रस्तुतकर्त्ता

पं० सत्यपाल शर्मा
(वेद शिरोमणि, एम० ए०)

●

महान् युग पुरुष देव दयानन्द
का
आदर्श जीवन चरित्र

द्वितीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण

●

दिसम्बर : १९६८

जन-ज्ञान (मासिक)
१५६७, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली-५

भारतेन्द्रनाथ "साहित्यालंकार" के संरक्षण,

निर्देशन में प्रकाशित

आर्य जनता का अपना प्रतिनिधि प्रकाशन

●

संपादक

राकेश रानी

वार्षिक मूल्य
६)
विदेश में
१२ शिलिंग

इस अंक का मूल्य
१)

वर्ष १
अंक ८

दिसम्बर : १९६८

(प्रचारार्थ ६०) की १००, १८) की २५ और ८) की १० प्रतियाँ)

संपादक, मुद्रक तथा प्रकाशक श्रीमती राकेशरानी द्वारा जन-ज्ञान प्रकाशन हेतु
जय भारती प्रेस, सदर बाजार, दिल्ली में मुद्रित
और १५६७, हरध्यानसिंह रोड, नई दिल्ली-५ से प्रकाशित।

सम्पादकीय

जावन से प्रकाश लें !

महर्षि दयानन्द युग पुरुष थे, उन्होंने अपना जीवन मानव के उत्थान औ निर्माण हित अर्पित कर दिया था। निष्पक्ष भाव से विचार किया जाए तो धरती के प्रांगण में दयानन्द सा दार्शनिक, मानवता का पुजारी, सत्य का अन्वेषक और कल्याण मार्ग का द्रष्टा और कोई व्यक्ति नहीं हुआ।

उनकी महानता शब्दों में नहीं आँकी जा सकती। फिर भी आज की सब से बड़ी आवश्यकता उनके जीवन चरित्र से सभी को परिचित कराना है क्योंकि अभी तक महर्षि के प्रति सच्चे ज्ञान का अभाव विद्यमान है। 'जन-ज्ञान' अपने सीमित साधनों के साथ यह संक्षिप्त जीवन-चरित्र अत्यन्त श्रद्धा और आग्रह के साथ पाठकों को भेंट करता है। हमारी प्रार्थना पर प्रसिद्ध विद्वान् पं० सत्यपाल जी ने इसे तैयार करने में जो श्रम किया वह उनकी उत्कट ऋषि भक्ति का सूचक है।

धरती का व्यामोह, विनाश की ओर प्रयाण और सर्वनाश की उपासना का चक्र रोकने के लिए महर्षि का जीवन प्रकाश स्तंभ है। उनके उपदेश अमोघ अस्त्र और निर्देशन जीवन का संगीत है। काश, कि उनके जीवन का प्रकाश हमारे अन्तर का अंधकार दूर कर सकता।

द्वितीय संस्करण

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि इस पुस्तक का प्रथम संस्करण ५-७ दिन में ही समाप्त हो गया। आर्य जनों ने जिस उत्साह से इसका स्वागत किया उसके लिए हम आभारी हैं हमारी इच्छा इसे लाखों की संख्या में प्रकाशित करने की है किन्तु साधनों का अभाव इच्छापूर्ति में बाधक है। प्रभु कृपा करें कि हम अगली दीपावली तक इसकी कम से कम १ लाख प्रतियाँ निकालने में समर्थ हो सकें।

—राकेश रानी

महर्षि दयानन्द की जय !

सारी धरती मिल कर बोले, जय दयानन्द ऋषि राज की।
अवनी अम्बर में गूंजेगी, जय दयानन्द महाराज की॥

उठो आर्य जन, उठो वीर वर, वेद ज्ञान फैलाओ रे।
त्रस्त मनुज के अन्तर तल में, वेद सुधा छितराओ रे॥

वेदामृत का पान करेंगे, दयानन्द का गान करेंगे।
समय आएगा सत्य ज्ञान पर, सारे ही अभिमान करेंगे॥

तब बोलेंगे उच्च स्वरों में, ऋषिवर दयानन्द की जय।
मुनिवर दयानन्द की जय, ऋषिवर दयानन्द की जय॥

दयानन्द सा नहीं हुआ है, मानव का उपकारी।
मनुज मात्र का जीवन-रक्षक, सत्यव्रती ब्रह्मचारी॥

उसके गीत गुंजाओ रे, धरती नयी बनाओ रे।
तम अज्ञान हटाओ रे, स्वर्ग यहाँ पर लाओ रे॥

आर्य वीर जागो अब तो तुम, जय बोलो ऋषिराज की।
जन-मन तक पहुंचा दो गाथा, मानवता अधिराज की॥

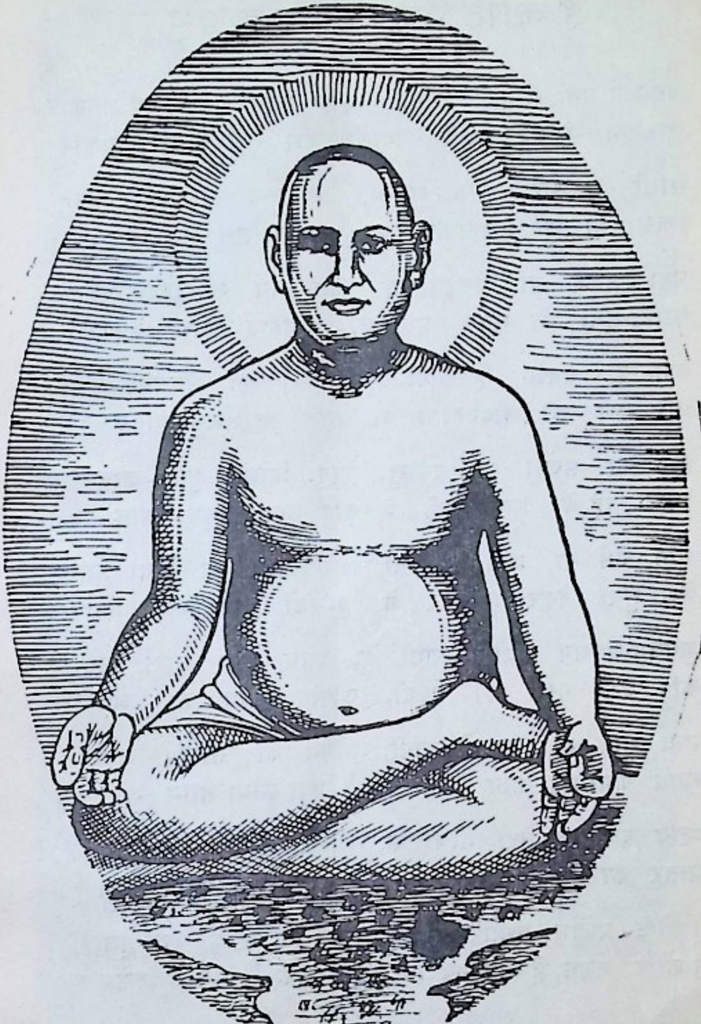
करलो उसको कोटि प्रणाम, जो था युग का भाग्य ललाम।
सबसे ऊँचा और महान्, दिये सभी को शुभ वरदान॥

बलिदानी की जय-जयकार, वीरव्रती की जय-जयकार।
गूंजेगी जिस दिन अम्बर में, दयानन्द की जय-जयकार॥

(उस दिन)-दनुज नहीं रह पायेगा, मनुज नहीं रो पायेगा।
कष्ट क्लेश कट जायेगा, स्वर्ग धरा पर आयेगा॥

मिलकर बोलो, उठ कर बोलो, बढ़कर बोलो, जमकर बोलो।
ऋषिवर दयानन्द की जय, मुनिवर दयानन्द की जय॥

—राकेश रानी



हैं कोटि प्रणाम चरणों में ऋषिराज तुम्हारे

हैं कोटि प्रणाम हे महाप्रभु !

जन-जन मन में गूँज रही है, ऋषि दयानन्द की जय जयकार,
कण-कण में नव ज्योति जगाती, फैल रही है जय जयकार।

आओ मिलकर गीत सुनायें, जीवन-गाथा पढ़ें, पढ़ायें,
रक्षक था जो मानवता का, उसका हम संदेश सुनायें,

महा मनुज था, देवदूत वह, सत्य-ज्ञान का दिव्य पुजारी,
शान्ति-सुधा का सबल प्रसारक, दयानन्द सबका उपकारी।

दयानन्द सबका हितकारी, मानवता का उन्नायक था,
प्राण-प्राण का जीवनदाता वेद ज्ञान का मधु गायक था।

प्रभु का सच्चा पुत्र दयालु, राह दिखाई पुनः ज्ञान की,
भटक रहे थे, सिसक रहे थे, चाह जगाई पुनः ज्ञान की।

ज्ञान धर्म था, ज्ञान कर्म था, ज्ञान लक्ष्य का किया प्रसार,
वेद सुधा देकर ऋषिवर ने, पाखंडों पर किया प्रहार।

जगमग-जगमग ज्योति जगी है, जाग उठा सारा संसार,
कांप उठी पापों की गद्दी, कांपा छलना का व्यापार,

सत्य ज्ञान की किरणें जागीं, जीवन का सौन्दर्य जगा है,
न्याय जगा-प्रभु ज्ञान जगा, धरती का सोया भाग्य जगा है।

ऋषि दयानन्द तेरी गाथा से, जीवन में जय-भाव जगे हैं,
अन्तर का गहरा अन्धकार अब दूर हुआ जय-गान जगे हैं।

हैं कोटि प्रणाम तुम्हारे पावन चरणों में ऋषि राज हमारे,
है कोटि नमन, हे महापुरुष ! हे युग रक्षक ! सच के रखवारे।

—राकेशरानी



आर्य समाज संस्थापक : देवदयानन्द

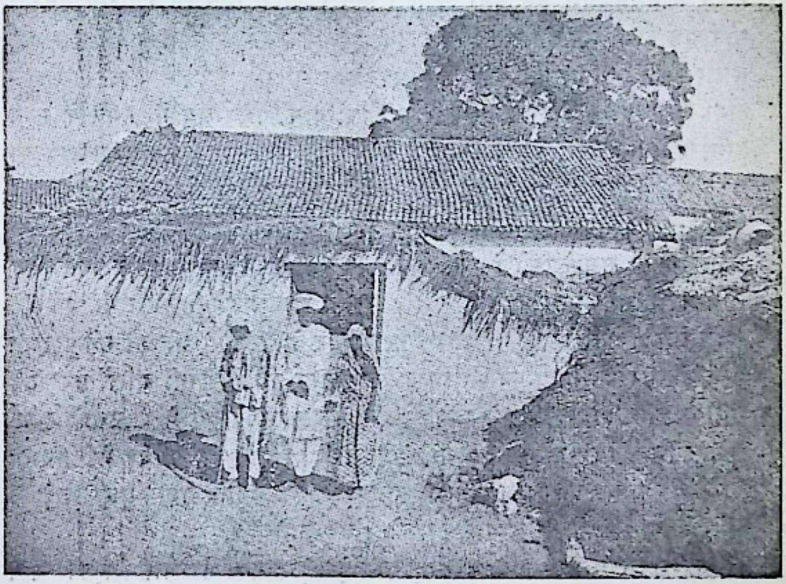
अमर कहानी

● सत्यपाल शर्मा "सत्य"

सुनो सुनो सब नर नारी गण दयानन्द की अमर कहानी।
अन्त में जीवन में जो अपने हुए महर्षि महा ज्ञानी ।।
नाम एक गुजरात प्रान्त है भारत की सुन्दर साया।
राज्य मौरवी में टंकारा नामक ग्राम सदा भाया।
करषन नाम हुए इक भूमिय जिनके घर थी सब माया।
अठारह सौ इक्यासी में घर में इक दीप चला आया।
इस दीप की ज्योति लख कर के था घर का दीपक शरमाया।
नाम मूलशंकर फिर अन्त में नाम दयानन्द पाया।
सच्चे शंकर के पाने को खाक जगत् की छानी ।। सुनो सुनो······।।
तात संग मन्दिर में जाकर शिव रात्रि का व्रत ठाना।
मानस मन्दिर सज्जित कर, था उनको शिव शिव तर पाना।
मध्यरात्रि पिण्डी पर चढ़ते चञ्चल इक चूहा देखा।
देख चढ़े फूल फूल को खाते भाल खिंची चिन्ता रेखा।
उठ कर के फिर पूज्य तात को सोते आन जगाया।
"यह ईश नहीं पत्थर है" कह कर अपना भाव सुनाया।
पूज्य पिता ने समझाया पर उनकी एक न मानी ।। सुनो सुनो···।।
घर त्याग चले गुरु वर्ग खोजने सच्चा शिव जो दरशाए।
जब कहीं नहीं पाया कोई भी तो काशी नगरी आए।
वहाँ सुना मथुरा में रहते संन्यासी एक विद्वद्वर।
विरजानन्द सदा आनन्दित रहते हैं वे योगि प्रवर।
तुरत चले आए मथुरा में अपने योग्य गुरु पाया।
चरण कमल छू कर के उनका मन फूला न समाया।
विविध वेद शास्त्रों की शिक्षा पाकर हुए महा ज्ञानी ।। सुनो सुनो···।।
सत्यार्थ प्रकाश रचा वेदों के सब सन्देश सुनाए।
इतस्ततः सन्देश सुना ऋषि अन्त जोधपुर आए।
उपदेशामृत राजा को दे स्वयं दूध में विष पाया।
अन्त समय भी विषदाता पाचक पर करके वे दाया।
मिले ईश से मुसकाते वे छोड़ दुःखी जगती को।
"सत्य" दिवाली की जगमग में बुझी प्रवरतर ज्योति वो।
देकर गुरुदत्त को आस्तिकता दान चला फिर वह दानी ।। सुनो सुनो···।।

बाल्य काल—१

भारत के गुजरात प्रान्त में मोरवी राज्य के टंकारा नामक छोटे से गाँव में करषनजी लालजी त्रिवेदी नाम से एक समृद्ध गृहस्थ रहते थे। सन् १८२४ ई० में उनके यहाँ एक बालक ने जन्म लिया। मूल नक्षत्र में उत्पन्न होने के कारण बालक का नाम मूलशंकर रखा गया। संन्यास लेने पर इसी बालक का नाम दयानन्द हुआ। करषनजी औदीच्य ब्राह्मण थे। परन्तु भिक्षा वृत्ति



टंकारा का वह मकान : जिसमें मूलशंकर पैदा हुए

नहीं थी, लेनदेन का व्यवहार होता था और रियासत की ओर से जमींदारी भी मिली हुई थी जो तहसीलदारी के बराबर थी। आठवें वर्ष में मूलशंकर

का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और गायत्री, सन्ध्या, रुद्री आदि कंठस्थ कराये गये। बचपन से ही इनकी स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र थी। १४ वर्ष की आयु तक मूलशंकर यजुर्वेद संहिता कंठस्थ कर चुका था। व्याकरण में प्रवेश हो चुका था। ऐसी अवस्था में उसके गुरुओं की यह सम्मति हुई कि अब यह धार्मिक कृत्यों में भी भाग ले सकता है।

शिवरात्रि व्रत

१८९४ विक्रमी की माघ वदी १४ को शिवरात्रि को व्रत था। मूलशंकर के सामने जब व्रत रखने का प्रस्ताव किया गया तो वह पहले राजी नहीं हुआ। माता ने भी प्रमवश उसे मना किया। तब पिता ने शिव का महात्म्य सुनाया और व्रत रखने का संकल्प कराकर उन्हें एक प्रकार से व्रतोपवास की अनिवार्य आज्ञा दी गई। उस दिन सायं समझाया गया कि रात भर हमें जागरण करना होगा अन्यथा व्रत निष्फल हो जायेगा। रात्रि को शिवालय में नगर के सभी साधारण भक्त और प्रतिष्ठित लोग व्रतपूर्वक, पूजा-पाठ, जप और जागरण करते थे। पिता भी बालक को इसी मन्दिर में ले गये। मन्दिर में दीप जगमगा रहे थे। सारा शिवालय सुगंधित था। पहले प्रहर की पूजा लोगों ने बड़े भक्ति-भाव से समाप्त की। दूसरे प्रहर की पूजा भी जैसे-तैसे हो गई। लेकिन रात्रि का तीसरा प्रहर प्रारंभ होते ही लोगों की आंखें मिचने लगीं और वे ऊंघने लगे। मूलशंकर के पिता और मन्दिर के पुजारी भी सो गये। इधर मूलशंकर पर भी निद्रा का आक्रमण होने लगा पर वे अपनी आँखों पर ठंडे पानी के छींटे दे देकर अपने आपको और सचेत बनाये हुए थे। उनकी दृष्टि बराबर शिवलिंग पर गड़ी हुई थी। इतने में ही देखा कि मन्दिर में सन्नाटा पाकर चूहे बिलों से निकल आये हैं और मूर्ति के इर्द-गिर्द पड़ा हुआ चढ़ावा खा रहे हैं। कभी-कभी शिवलिंग पर भी चढ़ जाते हैं।

मूलशंकर ने सोचा कि जो महादेव बड़े-बड़े दानवों के व्यतिक्रम को नहीं सह सकता और त्रिशूल लेकर उनका संहार कर देता है वह इन चूहों को सिर पर चढ़ने से तो अवश्य रोकेगा, और कुछ नहीं तो सिर हिलाकर ही उन्हें भगा देगा। परंतु उन्होंने आश्चर्य से देखा कि वह शिवलिंग निश्चल था। मूलशंकर के मन में विचार तरंगें उठने लगीं, तो क्या यह पत्थर वही "शिव" है जो कैलाश-



टंकारा के शिव मन्दिर में : बालक मूलशंकर

वासी है ? जो संसार की प्रलय करने की शक्ति रखता है ? नहीं, वह कोई और शिव होगा।

मूलशंकर ने अपने पिता को जगाया और बिना किसी डर के पिता के सामने शंका रखी। बजाय समझाने के पिता ने क्रोधपूर्वक डांटा और बोले—"यह बात तू क्यों पूछता है ? ऐसे शिवाराधन के समय ऐसा प्रश्न क्यों करता है ?" जब मूलशंकर ने अपना मन स्पष्ट किया तो पिता बोले—"पुत्र इस कलि काल में महादेव के साक्षात् दर्शन नहीं होते। इसलिए उनकी मूर्ति बनाकर पूजन किया जाता है। सत्य है, यह तो केवल देवता की मूर्ति है, साक्षात् देवता नहीं है।" मूलशंकर का मन सन्तुष्ट नहीं हुआ। मूर्तिपूजन से उनकी आस्था समाप्त हो गई। उन्होंने चेतन सत्ताधारी वास्तविक शिव को प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। स्वभाव ही उनका ऐसा था कि एक बार कोई संकल्प करने पर उस पर दृढ़ रहते थे। वे घर गये और माताजी से माँगकर भोजन आदि करके एक बजे के बाद सो गये। सबेरे पिताजी को पता लगा कि मूलशंकर ने भोजन कर लिया। बड़े क्रुद्ध हुए लेकिन मूलशंकर के चाचा और माताजी के समझाने पर पिता ने व्रतोपवासादि से दूर रहकर यथारुचि अध्ययन के लिए उन्हें प्रसन्नता से अपनी अनुमति दे दी। अब मूलशंकर को पूजापाठ से खुली छुट्टी मिल गई और विद्याध्ययन में पूरी तरह लग गये।

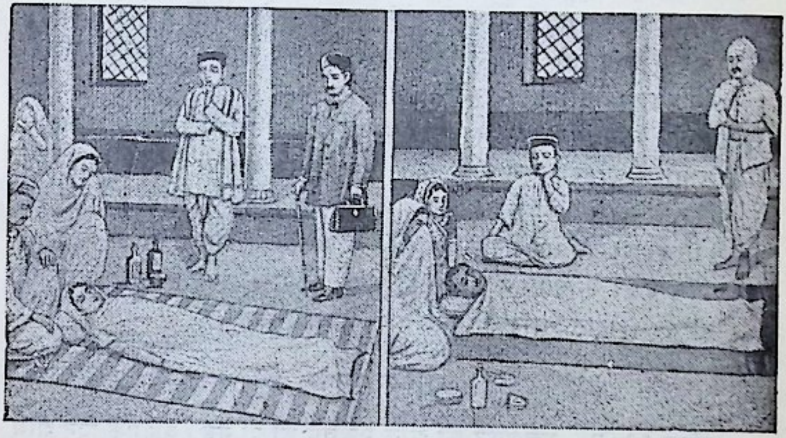
मृत्यु दर्शन

उन दिनों दो ऐसी घटनाएँ हुईं जिन्होंने मूलशंकर के स्वच्छ दर्पण के समान शुभ्र हृदय पर स्थायी प्रतिबिम्ब छोड़ दिया। ऋषि स्वयं लिखते हैं:—

"मेरी १६ वर्ष की अवस्था के पीछे मेरी १४ वर्ष की बहिन थी।...एक रात जबकि हम एक मित्र के घर गये हुए थे तब अचानक नौकर ने आकर खबर दी कि उसे हैजा हो गया। हम सब तत्काल वहाँ से आये, वैद्य बुलाये गये, औषधि की, मगर फायदा नहीं हुआ। चार घंटों में उसका शरीर छूट गया। मैं उसके बिछौने के पास दीवार से आसरा लेकर खड़ा था। जन्म से लेकर इस समय तक मैंने पहली बार मनुष्य को मरते देखा था। इससे मेरे मन को बड़ा कष्ट हुआ और मुझे बहुत डर लगा और मारे डर के सोचने

लगा कि क्या सारे मनुष्य इसी प्रकार मरेंगे और ऐसे ही मैं भी मर जाऊँगा ? सोच-विचार में पड़ गया कि जितने जीवन संसार में हैं उसमें से क्या एक भी न बचेगा ? इससे ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे जन्म-मरण रूपी दुःख से यह जीव छूटे और मुक्त हो, अर्थात् इस समय मेरे चित्त में वैराग्य की जड़ जम गई ।"

दूसरी घटना का वर्णन यों है—"जब मेरी अवस्था १९ वर्ष की हुई तब जो मुझसे अत्यन्त प्रेम करने वाले बड़े धर्मात्मा तथा विद्वान् मेरे चाचा थे उनको हैज़े ने आ घेरा । मरते समय उन्होंने मुझे पास बुलाया । लोग उनकी नाड़ी देखने लगे । मैं भी पास ही बैठा हुआ था । मेरी ओर देखते ही उनकी आँखों से आँसू बहने लगे । मुझे भी उस समय बहुत रोना आया । यहाँ तक कि रोते-रोते मेरी आँखें फूल गईं । इतना रोना मुझे पहले कभी नहीं आया था । उस दिन मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं भी चाचा के सदृश एक दिन मरने वाला हूँ ।"



बहन और चाचा की मृत्यु का दृश्य

तपे हुए लोहे पर चोट लगी । दोनों घटनाओं ने वैराग्य ला दिया । सच्चे शिव को प्राप्त करने के संकल्प और मृत्यु से छूटने की इच्छा और वैराग्य ने उनके मन को पूर्णतः बदल दिया । मूलशंकर के माता-पिता को यह पता लगा

तो वे उसे बाँधने के लिए विवाह कर देने का संकल्प करने लगे। मूलशंकर के माता-पिता की अधीरता ने इनका मार्ग एकदम बदल दिया।

वैराग्य

मूलशंकर कुछ दिनों के लिए तो विवाह के इस प्रसंग को टालने में समर्थ हो गये परन्तु उन्हें भय था कि २१ वर्ष के प्रारम्भ होते ही विवाह की चर्चा फिर चलेगी और उस समय उसका टालना कठिन हो जायेगा। इसलिए संवत् १६०० में २०वें वर्ष की समाप्ति पर उन्होंने पिताजी से कहा कि मुझे व्याकरण, ज्योतिष और वैद्यक विद्या पढ़नी है, इसलिए काशी भेज दीजिये। परन्तु पिताजी का कहना था : "अधिक पढ़कर क्या करोगे और बहुत पढ़कर हमने करना भी क्या है? तुम्हारे विवाह में और थोड़े दिन शेष हैं, तुम्हें गृहस्थ बनना है, इसलिए कामधन्धे में जी लगाना सीखो।" माताजी का भी यही आग्रह था। मूल शंकर ने बहुत कहा पर किसी ने नहीं मानी। कुछ दिन बीत जाने पर वह पिताजी से बोले "आपने मुझे काशी जाने से तो रोक दिया परन्तु इतना तो मान लीजिये कि यहाँ से ३ कोस पर अपनी जाति के एक वयोवृद्ध महान् विद्वान् रहते हैं, उन्हीं के पास जाकर पढ़ा करूं।" इस प्रस्ताव को करषनजी ने स्वीकार कर लिया और मूलशंकर उनके पास जाकर पढ़ने लगा। दुर्दैववश एक दिन उनके साथ विवाह का प्रसंग छिड़ गया और मूलशंकर के मुंह से ये शब्द निकल गये "मुझको विवाह से ऐसी घृणा है कि किसी प्रकार भी वह मेरे मन से दूर नहीं हो सकती।" बात पिताजी के कानों तक पहुँच गई। उन्होंने पुत्र को तुरन्त बुला लिया। विवाह की तैयारियाँ शुरू हो गईं। परन्तु भाग्य तो कुछ और ही था।

गृह-त्याग

संवत् १६०२—मूलशंकर की आयु २२ वर्ष की हो गई। वह एक दिन शाम को पूर्ण वैराग्यवान् होकर फिर लौटकर घर न आने का संकल्प करके. स्नेह, स्मृति, वात्सल्य सभी कुछ त्यागकर अमर जीवन की तलाश में घर से निकल पड़ा। पहली रात अपने शहर से ६ कोस की दूरी पर बिताई। अभी जब एक प्रहर रात बाकी थी फिर यात्रा पर निकल गये और सायं से पहले ही २०

कोस पर एक गाँव में पहुँचकर विश्राम लिया। यहाँ हनुमान के एक मन्दिर में रात बिताई। ऊंचे-नीचे विषम पथ से चलते चले जाते थे ताकि उन्हें कोई जान-पहचान वाला न मिल जाये। घर में जब पता चला कि मूलशंकर घर से निकल गया है तो मानो उनपर भीषण वज्रपात हुआ। माता-पिता बहुत व्याकुल हो गये। चारों ओर सिपाही दौड़ा दिये गये। जहां-जहां भी उनके पहुँचने की संभावना थी, खोज होने लगी। इधर मूलशंकर टेढ़े-मेढ़े रास्तों से चले जा रहे थे। जब वे तीसरे दिन यात्रा कर रहे थे तो रास्ते में उन्हें यह मालूम हो गया कि करषनजी के पुत्र की खोज में घुड़ सवार यहां तक आये थे। यह सुनकर वह और आगे बढ़ गये। उसी दिन मार्ग में उनको साधुओं के भेष में एक ठगों का दल मिला। पहले तो उन्होंने उसकी यात्रा का कारण पूछा और फिर इनको चिढ़ाने लगे, "देखो त्यागी बनने चला है। हाथ की अंगूठियां तो छोड़ी ही नहीं गईं। वैराग्य सिद्धि क्या धूल करोगे ? इसलिए सारे भूषण मूर्ति के आगे चढ़ा दो।" मूलशंकर उनकी ठगाई में आ गए और उन्होंने अंगूठियाँ उंगलियों से उतारकर उनके आगे फेंक दीं।

शुद्ध चैतन्य बने

चलते-चलते उन्होंने सुना कि सायला नामक एक ग्राम में एक लाला भक्त रहता है। वहाँ अन्य भी अनेक साधु-सन्त रहते हैं। यह सोचकर कि शायद वहाँ कोई मुक्ति का मार्ग जानने वाले मिल जाये, वहाँ पहुँचे। वहां उनकी एक ब्रह्मचारी से भेंट हुई जिसने उन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनने की प्रेरणा दी और उस ब्रह्मचारी ने मूलशंकर को दीक्षा देकर काषाय वस्त्र धारण कराये। एक तूंबा दे दिया और आदेश किया कि आज से तुम्हारा नाम शुद्ध चैतन्य हुआ। शुद्ध चैतन्य उन्हीं साधु-सन्तों की मन्डली में रहकर कुछ योग साधन में भी प्रवृत्त हो गया। परन्तु जब देखा कि उनकी वास्तविक कामना वहां पूर्ण नहीं होगी, वे उस मठ से चलकर कोट-कांगड़ा नाम के एक छोटे से शहर में चले गये। उस गाँव में बहुत से वैरागी रहते थे। शुद्ध चैतन्य को गेरुए वस्त्रों में देखकर उन्होंने उसकी हंसी उड़ाई और उसकी रेशमी धोतियों पर उन्होंने आक्षेप किया। ब्रह्मचारी के पास उस समय ३ रुपये बचे हुए थे। उनसे उन्होंने नई सादी धोतियां लीं और रेशमी धोतियाँ वहीं फेंक दीं और वैरागियों

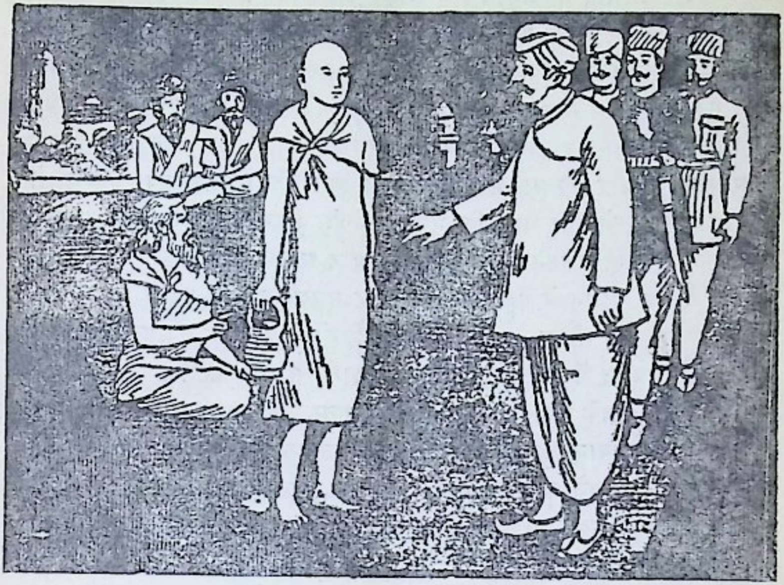
से दूर एकान्त स्थान में उन्होंने ३ मास बिताये।

सिद्धपुर के मेले में

उन दिनों कोट-कांगड़ा में सिद्धपुर के कार्तिक मेले की बड़ी चर्चा थी। ब्रह्मचारी भी योगियों के दर्शन की अभिलाषा से सिद्धपुर की ओर चल दिये। गाँव से थोड़ी ही दूर गये थे कि उनका एक ग्रामीण वैरागी से साक्षात्कार हुआ। वह उनका परिचित था। दोनों ही की आँखों से टपटप आँसू गिरने लगे। ब्रह्मचारी ने वैरागी को अपने गृह-त्याग की सारी कहानी सुना दी। इसपर गम्भीर होकर वैरागी ने घर से भाग निकलने पर बहुत खेद प्रकट किया और ब्रह्मचारी को धिक्कारा। वैरागी के पूछने पर शुद्ध चैतन्य बोले—"हाँ मैंने घर त्याग दिया है और कार्तिक के मेले पर सिद्धपुर जा रहा हूँ।" ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य सिद्धपुर आये। वहां नीलकंठ महादेव के मठ में आसन जमाया। वहाँ वास करने वाले सन्तों और योगियों का सत्संग करते हुए ज्ञानार्जन करने लगे परन्तु जिस वैरागी ने ब्रह्मचारी से गृह त्याग की कहानी सुनी थी उसने अपने घर जाकर पत्र द्वारा करषनजी को सारी बात सूचित कर दी। समाचार पाते ही उनके पिता ४ सैनिकों के साथ सिद्धपुर आ गये और मेले में घूम-घूमकर अपने पुत्र को खोजने लगे।

पिता से अन्तिम भेंट

एक दिन सवेरे उनके पिता यकायक उस शिवालय में आ खड़े हुए जिसमें कि उनका पुत्र गेरुए वस्त्र धारण किये सामने बैठा था। पुत्र को इस दशा में देखकर उनके क्रोध की सीमा न रही। कड़कती हुई वाणी से बोले—"तूने सदैव के लिए हमारे वंश को दूषित कर दिया।" आवेश में और भी बहुत सी बाते कहीं। मूलशंकर अपने पिताजी को देखने का साहस न कर सके। आसन से उठे। दोनों पैर पकड़ लिये और बोले—"मैंने धूर्त लोगों के बहकाने से गृह-त्याग किया। इस कर्म का मुझे पर्याप्त फल मिल चुका है। आप शान्त हों, मेरे अपराधों को क्षमा करें। खुशी से मैं आपके साथ चलने को तैयार हूँ।" क्रुद्ध पिता ने गेरुआ कपड़ा फाड़कर चिथड़े-चिथड़े कर दिया और उन्हें सफेद कपड़े पहनाकर वहाँ ले गये जहाँ वह खुद ठहरे हुए थे। उन पर



सिद्धपुर के मेले में पिता से अन्तिम भेंट

कड़ा पहरा लगा दिया गया। दिन-रात सैनिक उनपर निगाह रखने लगे। परन्तु उनके पिता जितना उस मूलशंकर को वैवाहिक बंधनों में बांध देने के अपने प्रयत्न में पक्के थे उतना ही सांसारिक बंधनों से हमेशा हमेशा के लिए मुक्त हो जाने के प्रयत्न में मूलशंकर पक्के थे। पिताजी को यही विश्वास दिलाते रहे कि मैं अवश्यमेव घर चलूंगा और माताजी के दर्शन करूंगा। पर इधर मौका ढूंढ़ते रहे कि कब दाँव लगे और कब भाग निकलें।

पितृ बंधन से मुक्त

पितृ बंधन में पड़े दो और दिन बीत गये। तीसरा दिन भी ज्यों-त्यों करके काटा। तीसरी रात आ गई। एक-एक पल जागते-जागते काट रहे थे। शरीर वहाँ जरूर था पर मन से बहुत दूर जा चुके थे। संकल्प ने साथ दिया, तीसरी रात्रि का तीसरा पहर प्रारम्भ हुआ। पहरे वाले झूमने लगे और

धीरे-धीरे गाढ़ी नींद में सो गये। मूलशंकर उठे, पानी का भरा एक लोटा हाथ में ले लिया ताकि अगर कोई पूछे तो कह दें कि शौच को जा रहा हूँ। बिना रोक-टोक भागते हुए सिद्धपुर से आध कोस दूर एक उद्यान में जा पहुँचे। वहाँ एक पुराना मन्दिर था। बड़ का पेड़ था। जटाओं के सहारे उस मन्दिर के शिखर पर जा कर हाथ में लोटा लिए बैठ गये। सारा दिन इसी प्रकार घोर कष्ट में और उपवास में वहीं बैठे-बैठे बिता दिया उधर जब पहरेवालों और करषनजी को पता चला कि मूलशंकर जी फिर भाग गये तो हलचल मच गई। उन्हें पकड़ने के लिए चारों ओर आदमी दौड़ाये गये। खोजते-खोजते वे उस उद्यान में पहुँचे कि जहाँ पर मूलशंकर छिपे बैठे थे।

मन्दिर के भीतर, बाहर ढूंढ़ा मालियों से पूछताछ की पर कोई पता नहीं चला। अन्त में निराश होकर वे उद्यान से चले आये। सारे समय मूलशंकर ऐसे दुबके बैठे थे कि हिलना-डुलना, खांसना-खखारना तो दूर सांस की भी आवाज सुनाई नहीं देती थी। उन सब के वापस चले आने के बाद रात को ७ बजे जब कुछ अन्धेरा हो गया, मूलशंकर मन्दिर की चोटी से नीचे उतरे और सड़क छोड़कर आगे चल पड़े। मूलशंकर का बन्धु-मिलाप और पितृ-दर्शन बस यहीं अन्तिम सिद्धपुर में हुआ।

संन्यास-दीक्षा

बहुत से गावों और शहरों से विचरते हुए वे अहमदाबाद से बड़ौदा में आकर कुछ काल ठहर गये। यहाँ ब्रह्मचारियों और संन्यासियों से वेदान्त के बारे में चर्चा चलती रहती थी और उनके संसर्ग में आकर शुद्ध चैतन्य पक्के वेदान्ती बन गये। उन्हीं दिनों उन्होंने सुना कि नर्मदा तट पर बड़े-बड़े विद्वानों की एक बड़ी सभा होने वाली है। वे तुरन्त नर्मदा की ओर चल पड़े और वहां सच्चिदानन्द नाम के एक परमहंस से मिले। उन्होंने बताया कि इसी नर्मदा के तट पर चाणोद करनाली में बड़े-बड़े विद्वान् ब्रह्मचारियों की एक मण्डली आजकल ठहरी हुई है। जिज्ञासु श्री शुद्ध चैतन्यजी चाणोदकरनाली पहुँच गये और वहाँ उनकी श्री चिदाश्रम आदि विद्वान संन्यासियों से भेंट हुई। वहां बड़ी ज्ञान चर्चाएँ हुई और बहुत ग्रंथ भी उन्होंने पढ़े।

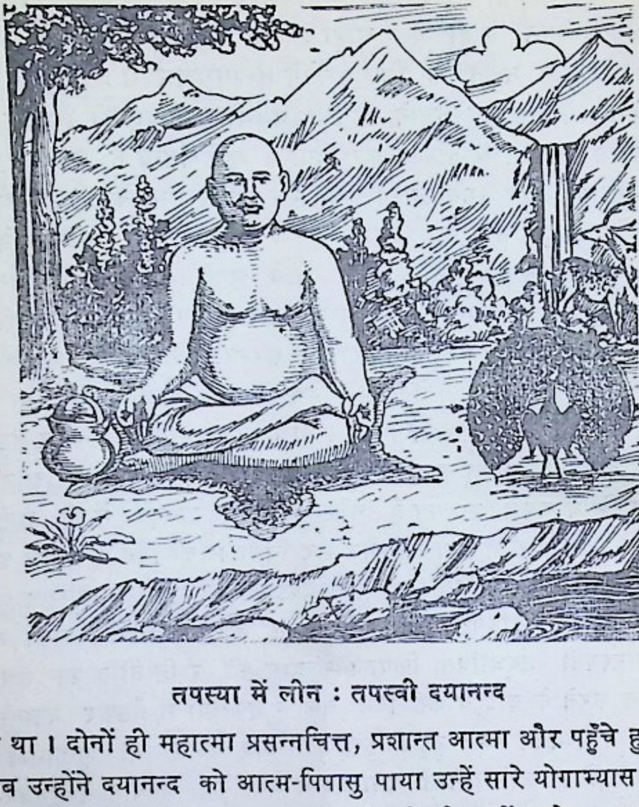
उन्हें पढ़ने में इतनी लगन होने लगी कि अधिक से अधिक समय

उन्होंने विद्याध्ययन में ही देना चाहा। और इसलिए अपने हाथों भोजन बनाने के बखेड़े से बचने के लिए उन्होंने संन्यासाश्रम में प्रवेश करने का संकल्प किया। परन्तु जब उन्होंने श्री चिदाश्रमजी से संन्यासकी दीक्षा देने की प्रार्थना की तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया। शुद्ध चैतन्य ने नर्मदा तट पर ड़ेढ़ वर्ष बिताया। इस समय उनकी आयु २४ वर्ष २ मास की हो गई थी।

एक दिन उन्होंने सुना कि चाणोद से १॥ कोस की दूरी पर जंगल में एक दाक्षिणात्य दण्डी स्वामी आये हुए हैं। तब वे अपने मित्र दक्षिणी पंडित को साथ लेकर उन दण्डी स्वामी की सेवा में उपस्थित हुए, बहुत से विषयों पर वार्तालाप हुआ। दण्डी जी का नाम पूर्णानन्द सरस्वती था। इनका शुद्ध चैतन्य पर बहुत प्रभाव हुआ और उन्होंने अपने मित्र पंडित के द्वारा उनसे संन्यास की दीक्षा देने के लिए निवेदन किया। पहले तो भरपूर युवावस्था देखकर दंडीजी ने इनकार कर दिया परन्तु बाद में बहुत कुछ आग्रह किये जाने पर और यह कहने पर कि ये गुर्जर ब्राह्मण हैं और गुर्जर भी द्रविड़ों में ही आते हैं, दण्डीजो ने उन्हें संन्यास देना स्वीकार कर लिया। दो दिन तक जप आदि साधन-विधि करके तीसरे दिन शुद्ध चैतन्य दण्डीजी की सेवा में उपस्थित हुए। दण्डी स्वामीजी ने विधिपूर्वक संन्यास धारण कराया और उनका नाम दयानन्द सरस्वती उद्घोषित किया। संन्यास की रीति-नीति का उपदेश आदि प्राप्त करने के बाद वे कई दिन तक गुरचरणों में बैठकर नम्रता से ब्रह्मविद्या का अध्ययन करते रहे। कुछ दिन बाद जब स्वामी पूर्णानन्द जी चाणोद से द्वारिका जाने लगे तो दयानन्द ने बड़ी पूजा सम्मान से गुरुचरणों में प्रणाम किया। उनके जाने के बाद कई दिन तक वे चाणोद में ही रहे।

योग साधन

वहाँ से वे व्यासाश्रम में गये, जहाँ योगानन्दजी से योगविद्या के रहस्य सुने और इनकी पुस्तकें भी अच्छी तरह पढ़ीं। वहां से वे छिन्नाड़े में कृष्ण शास्त्री नामक एक धुरन्धर व्याकरण पंडित के पास पहुँचे और उनसे व्याकरण के ग्रंथ पढ़ने के बाद फिर चाणोद करनाली वापिस आकर एक राजगुरु से वेदाध्ययन करने लगे। इस बार चाणोद में दयानन्दजीकी भेंट दो महात्माओं से हुई जिनमें से एक का नाम ज्वालानन्द पुरी और दूसरे का नाम शिवानन्द



तपस्या में लीन : तपस्वी दयानन्द

गिरी था। दोनों ही महात्मा प्रसन्नचित्त, प्रशान्त आत्मा और पहुँचे हुए योगी थे जब उन्होंने दयानन्द को आत्म-पिपासु पाया उन्हें सारे योगाभ्यास सिखाये और वे जब दोनों योगी अहमदाबाद जाने लगे तो इन्हें आदेश कर गये कि "एक महीने के पश्चात् वे अहमदाबाद में आयें।" योग साधन के सम्पूर्ण गूढ़ तत्व क्रियाओं के साथ भली भाँति समझा दिये जायेंगे। दयानन्द एक मास तक चाणोद में ही रहकर अहमदाबाद गये। योगियों ने दूधेश्वर के मंदिर में जाकर उनके दर्शन किये उन्होंने योग का प्रत्येक भेद योग के बताये अनुसार और इनका रहस्य स्वामी जी को बतलाया। स्वामी जी के अपने शब्दों में 'वहां उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और अपने कथानुसार मुझे निहाल कर दिया' उन्हीं महात्माओं के प्रभाव से मुझे क्रिया समेत पूर्ण योग-विद्या भलीभाँति विदित हो गई। इसलिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूं।"

पर्वतीय यात्रा

योगविद्या सीखकर वे आबू पर्वत की यात्रा के लिए चल पड़े। वहाँ सन्त महात्माओं से भेंट हुई और इसी प्रकार भिन्न-भिन्न स्थानों पर जाते हुए और सन्तों-महात्माओं से मिलते हुए वैशाख संवत् १९१२ में होने वाले कुम्भ के महामेले में हरिद्वार आये और गंगा के उस पार चंडी पर्वत के जंगल में योगियों की तलाश में निवास करते रहे। वहाँ से वे ऋषीकेश गये जहाँ उन्हें एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मिले। उनके साथ वे टिहरी की तरफ चल पड़े। टिहरी नगर के बाहर उन्होंने स्वच्छ स्थान में अपना निवास बनाया। एक दिन एक राजपंडित ने स्वामीजी के निवास पर जाकर घर पर भोजन के लिए उन्हें सादर आमन्त्रित किया। नियत समय पर उन्हें घर ले गया। परन्तु गृह-द्वार से आगे बढ़ते ही स्वामीजी को अत्यन्त घृणा हो आई क्योंकि उन्होंने देखा कि एक पंडित मांस काट-काटकर पका रहा है। इतने में उन्हें जाते देख गृह-पति स्वागत के लिए आया और आदर से बोला, कृपया बिना संकोच भीतर चले आइये। परन्तु स्वामीजी को वहाँ एक भी क्षण ठहरना मुश्किल हो रहा था। इसलिये यह कहकर कि आप अपना काम करते जाइये, मेरे लिए कुछ कष्ट न कीजिए। वे झट वहाँ से लौट पड़े और अपने निवास पर विश्राम लिया। थोड़े समय बाद गृहपति स्वामीजी के पास फिर आया और बोला, "कृपया चलिए, न जाने आप क्यों वापिस आ गये? हमने तो आपके निमित्त माँसादि उत्तम-उत्तम भोजन बनाया है। दयानन्दजी बोले—'सब वृथा और निष्फल है क्योंकि आप मांस-भक्षी हैं। मांस का खाना तो दूर रहा, मैं तो उसके देखने से ही रोगी हो जाता हूँ। मेरे योग्य तो केवल फलादि हैं। यदि आप मुझे भोजन कराना ही चाहते हैं तो कुछ अन्य फलादि वस्तुएँ यहाँ भिजवा दीजिए।" गृह-पति अपने किये पर बहुत लज्जित हुआ और बाद में उसने फलादि स्वामीजी के लिए भिजवा दिये। स्वामीजी कई दिनों तक वहीं रहे और गृह-पति के हृदय में उनके प्रति बड़ी श्रद्धा जग गई। स्वामीजी ने उससे प्रसिद्ध दुष्प्राप्य पुस्तकों का पतादि पूछा और बाद में उनसे तन्त्र ग्रंथ ले आने के लिए कहा क्योंकि वे उन्होंने अभी तक नहीं पढ़े थे। वह दे भी गया परन्तु ज्यों ही स्वामीजी उनमें से कुछ पुस्तकों को

उठाकर देखने लगे, उनमें अत्यन्त लज्जाजनक ऊट-पटांग बातें लिखी हुई थीं। उन पुस्तकों से उन्हें घृणा हो गई।

हिमालय यात्रा

टिहरी से स्वामीजी श्रीनगर आये। वहीं पास में पहाड़ी पर गंगागिरी नामक एक अच्छे सन्त महात्मा से भेंट हुई और स्वामीजी को उस महात्मा की संगति ऐसी अच्छी लगी कि दो मास से भी अधिक वे उनके साथ बने रहे।

ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में गंगागिरीजी से विदा लेकर, केदार घाट, रुद्र प्रयाग आदि होते हुए अगस्त्य मुनि की समाधि पर पहुँचे। वहाँ से शिवपुरी गये जहाँ उन्होंने शरद् ऋतु के चार मास बिताये। वहाँ से वे फिर केदार घाट आये और थोड़े दिन गुप्तकाशी रहकर तीसरी बार गंगागिरीजी का सत्संग सुख पाने के लिए फिर केदार घाट आकर रहने लगे। इन दिनों उनके मन में निकटवर्ती हिम-मंडित हिमालय की पर्वतमालाओं में घूमने की इच्छा पैदा हुई। और यह भी सोचा कि सुनते हैं हिमालय में बड़े सन्त-सिद्ध रहते हैं। उनके भी दर्शन हो जायेंगे। और कुछ दिन तक लोगों से पूछताछ कर जब किसी से कुछ न पता चला तो वह अकेले ही सिद्धों की तलाश में निकले और २० दिन तक घूमकर पीछे लौट आये। उन्हें किसी महात्मा के दर्शन नहीं हुए। जब वे तुँगनाथ की चोटी पर गये वहाँ पर उन्होंने पुजारियों का बहुत बड़ा जमघट देखा। वे वहां से उतर आये और जंगल में जाने लगे। उस सघन अरण्य में नाले जलहीन और बड़े भयानक हो रहे थे। साथ ही आगे जाने का कोई मार्ग तक नहीं दिखाई देता था। ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी भयंकर वन में स्वामीजी घिर गये। दिन में ही रात का-सा अंधेरा था। जब उन्होंने ऊपर वापस चढ़ जाने के लिए देखा तो दिखाई दिया कि जो मार्ग उतरते समय सुगम जान पड़ता था वही अब एक सीधी रेखा के समान खड़ा है इसलिए ऊपर चढ़ना प्राय: असम्भव समझकर, सूखी घास, झाड़ियाँ और टहनियाँ पकड़-पकड़ कर एक नाले के तट पर आ पहुँचे। वहाँ पर एक चट्टान थी उस पर खड़े होकर चारों तरफ देखने लगे परन्तु कहीं कुछ मार्ग इत्यादि नहीं दिखाई दिया। सूर्य अस्त होने लगा था, ठंड पड़ने लगी, वे फिर चले। ऐसे स्थानों में से होकर निकलना पड़ा जहाँ झाड़ियों में उनके वस्त्र उलझकर

चिथड़े-चिथड़े हो गये। नुकीले पत्थरों की ठोकरों से और कांटों के चुभने से पाँव में घाव हो गये, खून बहने लगा परन्तु इन सारे कष्टों को सहते हुए वे अन्त में तुँगनाथ की तलहटी में आ गये और साधारण मार्ग उनको मिल गया। निस्तब्ध नीरव रात्रि में बड़ी सावधानी से मार्ग टटोल-टटोलकर चल रहे थे, राह में उनकी कुछ झोंपड़ियाँ मिलीं, पूछने पर पता चला कि वह रास्ता ओखीमठ को जाता है। रात भर चलकर वे वहाँ पहुँच गये।

ओखीमठ का प्रलोभन

ओखी मठ में रहते हुए स्वामीजी के ज्ञान और गुणों पर उस मठ का मुख्य महन्त मोहित हो गया और चेला बन जाने के लिए उन्हें प्रेरणा करता हुआ बोला—'यदि हमारे शिष्य बन जाओ तो गद्दी के स्वामी बन जाओगे। लाखों रुपये की सम्पत्ति तुम्हारे हाथ में हो जायेगी। तुम महन्त कहलाओगे, इसलिए मान प्रतिष्ठा का भी पार न रहेगा।'' ओखी मठ के महन्त का यह प्रलोभन पूर्ण सूत्र, सामान्य आत्माओं को तो बाँध लेता परन्तु महात्यागी दयानन्द को न बाँध सका। वे बोले 'मेरे पिता की सम्पत्ति आपकी पूजा पाठ के पाखण्ड द्वारा एकत्रित की गई पूँजी से कई गुना अधिक है। जब मैं उसे ही मिट्टी समझकर छोड़ आया हूँ तो आपके धन के लिए मुझे क्या लालच होगा ?'' वह महन्त स्वामीजी के मुख से लक्ष्मी के तिरस्कार के वचन सुनकर बोला, ''अच्छा बताइये आपका वह उद्देश्य क्या है? स्वामीजी बोले, 'मैं सत्य, योग-विद्या और मोक्ष चाहता हूँ। जब तक यह प्रयोजन सिद्ध न होगा तब तक तपश्चर्या करता हुआ मनुष्य मात्र के कर्त्तव्य और स्वदेशोपकार बराबर करता रहूँगा।'' यह सुनकर महन्त बड़ा प्रसन्न हुआ परन्तु स्वामीजी वहाँ कुछ सार न देख अगले दिन प्रातःकाल ही उठकर जोशी मठ की ओर चल दिये। जोशी मठ पहुँचकर सन्तमहात्माओं से सत्संग द्वारा और वहाँ से बद्री नारायण पहुँचे। वहाँ के मुख्य महन्त उस समय रावलजी थे। स्वामीजी उनके पास कई दिन तक रहे। दोनों के बीच कभी-कभी वेदों और दर्शनों को लेकर बड़ा वाद-विवाद छिड़ जाया करता था। यहाँ स्वामीजी ने दृढ़ संकल्प कर लिया कि इस समस्त प्रान्त में सब जगह घूमकर योगी और महापुरुषों की खोज अवश्य करूँगा।'

अलखनन्दा के तट पर

सूर्योदय के साथ ही एक दिन वे बद्री नारायण को चल पड़े और चलते चलते अलखनन्दा नदी के तट पर जा पहुँचे। अलखनन्दा का जल शिलाओं से टकराकर चक्कर खाकर गिर रहा था और बड़े वेग से नीचे को दौड़ा चला जा रहा था। उसके साथ-साथ उसके स्रोत की ओर वे बढ़ रहे थे। मार्ग वड़ा वीहड़ और विषम था। बहुत कठिनता से अन्त में वे नदी के निर्गम स्थान तक जा पहुंचे। दूसरी ओर जाने के लिए उन्होंने उस नदी को पार करने का संकल्प किया। स्वामीजी के शरीर पर बहुत ही थोड़े कपड़े थे। ठंडी हवा तीर की तरह शरीर में लग रही थी। भूख, प्यास अलग सता रही थी। स्वामीजी ने बरफ का एक टुकड़ा लेकर चवाया पर उससे भी कोई शांति नहीं हुई।

मौत के मुंह में

साहस के साथ नदी पार करने में प्रवृत्त हुए। उस जगह अलखनन्दा कहीं तो बहुत गहरी थी और कहीं एक-दो हाथ गहरी। उसका पाट आठ-दस हाथ का था। बरफ के छोटे-छोटे तिरछे और नुकीले टुकड़ों से भरी नदी को पार करते समय नुकीले टुकड़े स्वामीजी के नंगे पाँव पर बराबर चोट कर रहे थे। इससे उनके पैरों के तलवे छिल गये। उँगलियों में घाव हो गये और जगह-जगह से खून निकलने लगा। अत्यन्त ठण्ड के कारण पाँव ऐसे सन्न हो गया कि उन्हें उन घावों का भान ही नहीं हुआ। धीरे-धीरे महाराज की काया पर शून्यता छाने लगी। हृदय की भी चेतनता दूर पड़ने लगी। यहाँ तक कि वे शून्य अवस्था में मूर्छा खाकर उस बरफीले पानी में गिरने को ही थे कि साहस की बिजली सी उनके मन में कौंध गई और वे संभल गये। सावधान होकर बलपूर्वक नदी से बाहर निकले और दूसरे तट पर जा पहुँचे। वहाँ भी उनकी अवस्था कुछ समय तक मृत-तुल्य बनी रही। थोड़ी देर बाद उन्होंने अपने शरीर के ऊपर के सारे कपड़े उतारकर पाँव से लेकर घुटनों तक का सारा भाग उनसे लपेट लिया। ऐसी निराशामय परिस्थिति में जब आगे बढ़ने का कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था, स्वामीजी को दो पहाड़ी आदमी सामने से आते दिखाई दिये। उन्होंने स्वामीजी को अपने साथ चलने का बड़ा आग्रह

किया। परन्तु स्वामीजी चलने में बिल्कुल असमर्थ थे। बोले "खेद है कि मैं आपकी इस कृपापूर्ण सहायता को स्वीकार नहीं करता क्योंकि मुझमें चलने की थोड़ी भी शक्ति नहीं है। वे दोनों पहाड़ी आदमी अति खेद के साथ वहाँ से चल पड़े और थोड़ी ही देर में स्वामीजी की दृष्टि से ओझल हो गये।

काफी देर तक वहीं विश्राम कर लेने से स्वामीजी का शरीर स्वस्थ और मन शान्त हो गया। वहाँ से वे वसुधारा तीर्थ स्थान पर जा पहुँचे और वहाँ से लौटकर रात के ८ बजे बद्री नारायण वापिस आये। रावलजी के पूछने पर उन्होंने सारी घटना कह सुनाई। उन्होंने स्वामीजी को भोजन आदि कराया। रात भर सुखपूर्वक विश्राम करके अगले दिन सवेरे सम्मानपूर्वक रावलजी से विदा लेकर रामपुर को चल पड़े। चलते-चलते उसी शाम एक योगी के स्थान पर आ निकले। वह उच्च कोटि का ऋषि माना जाता था। स्वामीजी ने भी महापुरुष के पास ही रात्रि में विश्राम लेना उचित समझा। स्वामीजी बड़ी देर तक योगीराजजी से वार्तालाप करते रहे और उनसे बात-चीत करके उनका संकल्प और भी दृढ़ हो गया। जंगल और पर्वतों से होते हुए वे रामपुर आ पहुँचे। वहाँ उन्हें एक महात्मा मिले। स्वामीजी ने उन्हीं के पास अपना आसन लगाया। उन्होंने उस महात्मा की प्रकृति में एक विचित्र बात देखी। वह सारी रात जागता रहता था और ऊँचे-ऊँचे बात करने लगता था। कभी चिल्लाने लगता कभी ऊँची ध्वनि से रोने लगता। कौतूहलवश जब स्वामीजी वहाँ देखने गये तो वहाँ उन्हें दूसरा कोई भी नजर नहीं आया। अगले दिन महात्मा जी के चेलों से पूछने पर पता चला कि गुरुजी महाराज का स्वभाव ही ऐसा करने का है। अंत में उन्होंने महात्मा जी से जा पूछा और कई बार एकांत में चर्चा की तो स्वामीजी को पता चला कि यह पूर्ण योगी नहीं है।

गंगा तट पर

बाद में रामपुर से चलकर स्वामीजी काशीपुर होते हुए द्रोण सागर आये और उन्होंने सारा शरद्ऋतु वहीं बिताया। द्रोण सागर से स्वामीजी मुरादाबाद, संभल, गढ़मुक्तेश्वर होते हुए गंगा तट आ पहुँचे। उस समय उनके पास कुछ हठयोग की पुस्तकें थीं। उनमें नाड़ी चक्र का बड़ा विस्तृत वर्णन

था। स्वामीजी को उनकी बातों में हमेशा संदेह रहा करता था। दैवयोग से गंगा तट पर विचरते हुए एक दिन उन्होंने जल में एक शव बहता देखा। उन्होंने पुस्तक को नदी तट पर रख दिया और कपड़े संभाल कर गंगा की धारा में कूद पड़े और तुरन्त बहते हुए शव को लेकर किनारे ले आये। एक तेज चाकू निकाला और लगे शव को चीरने। सावधानी से चीर कर पहले हृदय निकाला। उसकी आकृति, स्वरूप और लम्बाई-चौड़ाई को पुस्तकों में लिखे वर्णन के साथ देर तक मिलाते रहे। इसी प्रकार सिर, गर्दन और आँखों की भी तुलना की। नाभि आदि चक्रों का भी परीक्षण किया। परन्तु उन पुस्तकों में वर्णित चक्रों और अंगों में उन्होंने वास्तविक चक्रों और अंशों से लेशमात्र भी मेल खाते नहीं देखा। स्वामीजी को उनकी असत्यता का पूरा निश्चय हो गया। सारी पुस्तकें शव के साथ ही बांधकर गंगा में प्रवाहित कर दीं।

इसी प्रकार गंगा के साथ चलते-चलते फर्रुखाबाद, कानपुर, प्रयाग, विंध्याचल और काशी होकर चंडालगढ़ आये और वहाँ दुर्गाकुण्ड के मंदिर में १० दिन तक रहे। वहाँ उन्होंने चावल खाना सर्वथा छोड़ दिया और केवल दूध पर ही निर्वाह करने का संकल्प किया।

नर्मदा तट पर

चंडालगढ़ से चलकर स्वामीजी ने नर्मदा नदी का स्रोत देखने की इच्छा से यात्रा आरम्भ की। किसी से भी मार्ग आदि कुछ भी न पूछते हुए चुपचाप दक्षिण की ओर चलते चले जा रहे थे। इसी प्रकार चलते हुए रास्ते में घना जंगल मिल गया। उसमें बहुत दूर कुछ झोपड़ियाँ-सी दिखाई दीं। स्वामीजी को भूख तो लग ही रही थी वे एक झोपड़ी में गये और कुछ दूध ग्रहण किया। वहाँ से आगे चलकर कोई पौन कोस पहुँचे होंगे कि रास्ता बन्द हो गया। कुछ छोटी-छोटी पगडंडियाँ थीं उनमें से एक पर स्वामीजी चल पड़े। थोड़ी दूर जाकर वे एक भयानक जंगल में फंस गये। वहाँ बेरी के बहुत से पेड़ थे। घास बड़ी लम्बी और घनी थी। कुछ देर वहाँ खड़े होकर सोच रहे थे कि किधर जाऊं, अचानक एक काला रीछ बड़ी तेजी से दौड़ता चला आता सामने दिखाई दिया। रीछ अपने पिछले पाँव पर खड़ा होकर मुंह खोलकर स्वामीजी को

खाने के लिए आगे लपका। जैसे ही स्वामीजी ने अपना सोटा रीछ की ओर बढ़ाया, उस डंडे को देखकर वह वहाँ से उलटे पांव भाग खड़ा हुआ। भालू का चिंघाड़ना सुनकर जिन झोपड़ियों में स्वामीजी ने दूध पिया था वहां के लोग शिकारी कुत्ते लेकर घटना स्थल पर आ गये। स्वामीजी को सुरक्षित देख प्रसन्न हुए और उनसे वापिस चलने का आग्रह करने लगे। बड़े स्नेह और आदर के साथ स्वामीजी ने उनकी बातें सुनीं परन्तु उन्होंने तो नर्मदा का स्रोत देखने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। उनके साथ नहीं गये। जैसे-जैसे नर्मदा के स्रोत की ओर वे बढ़ते जाते थे। कांटे झाड़ियाँ उनके मार्ग में बाधा-सी खड़ी होती जा रही थीं। कहीं वे घुटने के सहारे सरककर और पेट के बल रेंगकर भी चले। अनेक बार उनके पांव छिल गये, तलवे लहू से लाल हो गये, शरीर में अगणित कांटे चुभने से खून बहने लगा, कहीं-कहीं मांस की बोटियां तक उड़ गईं परन्तु धुन में पक्के स्वामीजी सारी विघ्न बाधाओं को पार करके अन्त में विजयी हुए। ज्यों ही कुछ आगे गए तो टिमटिमाते दीपक दिखाई पड़े। पास जाने पर स्वामीजी को गोबर के ढेर से घिरी हुई झोपड़ियाँ दिखाई दीं। वहीं एक स्वच्छ जल-धारा बह रही थी उसके पास ही स्वामीजी ने एक विशाल वृक्ष के नीचे विश्राम के लिए स्थान बनाया। रात भर सुख से सोने के बाद सवेरे नित्य कर्म से निवृत्त होकर नदी जल से अपने घावों को धोया और हाथ-पैर धोकर वे विश्राम के लिए गये।

थोड़ी देर बाद वहीं श्रद्धालु भक्त ने हाथ जोड़कर स्वामीजी से भोजन की प्रार्थना की और जब स्वामीजी ने कहा कि मैं अन्न ग्रहण नहीं कर रहा। उस मुखिया ने उनका तूंबा मांगकर भरकर दूध भिजवा दिया। साथ ही दो पुरुष स्वामीजी की रक्षणार्थ रात-भर वहीं रखे। स्वामी जी रात-भर अच्छी तरह सोये और अगले दिन सन्ध्योपासना करके फिर यात्रा आरम्भ कर दी। इसी प्रकार तीन वर्ष तक नर्मदा तीर पर पर्यटन करते रहे। इतने में उन्होंने दण्डीस्वामी श्री विरजानन्दजी का विमल यश सुना, और ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से मथुरा आ पहुँचे।

गुरु-शिष्य मिलन

संवत् १६१४ (सन् १८५७) की भारी सैनिक हलचल लगभग शांत हो गई थी और उसकी चिनगारियाँ केवल इधर-उधर ही दिखाई दे रही थीं कि ऐसे समय में कार्तिक सुदी २ संवत् १६१७ को स्वामी दयान्द सरस्वती मथुरा में प्रविष्ट हुए और सीधे दण्डीजी की अट्टालिका पर चढ़कर उनकी दीवार खटखटाने लगे। दण्डीजी ने पूछा—"कौन है ?" उत्तर मिला—"यह तो जानने की इच्छा है कि मैं कौन हूँ।" "कुछ व्याकरण भी पढ़े हो ?" उत्तर था–महाराज सारस्वत आदि व्याकरण ग्रंथ पढ़ा हूँ।" दण्डीजी ने द्वार खोल दिया। स्वामी जी ने सम्मान और विनय के साथ विरजानन्दजी को नमस्कार किया और उनका निर्देश पाकर पास ही बैठ गये। दण्डीजी ने फिर कहा—"दयानन्द अब तक जो कुछ तुमने पढ़ा है उसका अधिकाँश भाग अनार्ष ग्रंथ हैं। ऋषि शैली बड़ी सरल और सुन्दर होती है परन्तु लोग सहारा नहीं लेते। जब तक तुम अनार्ष पद्धति का परित्याग नहीं करोगे, आर्ष ग्रंथों का महत्व और मर्म समझ में नहीं आयेगा। यदि तुम मुझसे पढ़ना चाहते हो तो इन सारे ग्रंथों को यमुना को समर्पित कर आओ और उन सब मनुष्यकृत ग्रंथों को भूल जाओ।" स्वामीजी ने दण्डीजी के इस प्रथम आदेश को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया। दण्डीजी ने जब भोजन के प्रबन्ध की बात उठाई स्वामीजी बोले महाराज आप पढ़ाना आरम्भ कर दीजिए। शेष विषय में प्रबन्ध मैं जल्दी ही ..र लूंगा। दण्डीजी की प्रेरणा से सारे नगर में चन्दा करके स्वामीजी के लिए ३१ रु० के महाभाष्य मंगवाये गये। मथुरा वास के प्रथम दिनों में, उन दिनों घोर अकाल पड़ जाने के कारण, स्वामीजी बहुत दिनों तक चने खाकर ही अध्ययन करते रहे। बाद में मथुरा के प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री अमरलाल नामक एक आदर्श दानी ने स्वामी जी से भेंट की और उनकी अद्भुत प्रतिभा, विलक्षण बुद्धि, देह और ब्रह्मचर्य की ओजस्विता से प्रदीप्त मुख मण्डल को देखककर वे उनकी ओर आकर्षित हुए और अपने ही वंशीय जानकर उन्होंने प्रतिदिन अपने यहाँ ही भोजन करने का स्वामीजी को आग्रह किया। स्वामीजी ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और इस प्रकार भोजन के विषय में सर्वथा निश्चित हो गये। इसी तरह



व्याकरण-सूर्य : दण्डी स्वामी विरजानन्दजी

रात को तेल खर्च का प्रबन्ध एक और दानी महानुभाव ने कर दिया। दूध का प्रबन्ध भी दो रुपये महीने के हिसाब से मथुरा के दानी श्री हरदेवजी ने कर दिया। निवास के लिए विश्राम घाट के ऊपर लक्ष्मीनारायण मन्दिर के नीचे की एक छोटी-सी कोठरी उन्होंने ले ली थी। वह इतनी छोटी है कि स्वामीजी महाराज मुश्किल से ही पांव पसारकर सो सकते होंगे। उन दिनों स्वामीजी मस्तक पर विभूति रमाया करते थे। गले में रुद्राक्षी माला हुआ करती थी। सिर पर एक अंगोछा बांधे रहते थे और हाथ में लम्बा और मोटा दण्ड हुआ करता था। बहुत सवेरे ही उठकर स्नानादि करके संध्योपासना में मग्न हो जाते। आसनादि व्यायाम करते, दूर तक भ्रमण करने जाते। इतना सब करने के साथ ही अध्ययनार्थ गुरु सेवा में उपस्थित हो जाने में वे बड़े नियमबद्ध थे।

गुरु-भक्ति

गुरु-भक्ति में स्वामी दयानन्दजी ने अपने आपको एक आदर्श शिष्य सिद्ध किया था। विरजानन्दजी महाराज ब्राह्ममुहूर्त में ठंडे पानी से स्नान किया करते थे और पानी भी काफी अधिक होता था। स्वामी दयानन्द काफी रात रहते ही उठकर गुरु स्नान के समय के पहले ही यमुना जल के कई घड़े अपने कंधे पर उठा-उठाकर लाते और पर्याप्त जल इकट्ठा कर देते थे। सायंकाल के स्नान के लिए भी नियमपूर्वक स्वामीजी पानी लाते थे। दंडीजी के पीने के लिए यमुना के भीतर प्रवेश करके स्वच्छ पानी लाया करते थे। आंधी, वर्षा, कीचड़ कांटे किसी ने भी दयानन्दजी को इस सेवा से विरत नहीं किया। लगभग पन्द्रह-बीस घड़े जल उनको रोजाना ले जाना होता था। वे साधु स्वभाव और सरल प्रवृत्ति के थे। आदेश पालन, सेवा सुश्रूषा और चमत्कारिणी प्रतिभा के कारण दयानन्द गुरुदेव के पूर्ण कृपापात्र हो गये थे।

विस्मृत पाठ

एक दिन की बात है अष्टाध्यायी का एक प्रसंग इतना कठिन आया कि उन्हें अपने निवास स्थान पर जाकर वह भूल गया। पहले ऐसा कभी नहीं होता था। स्वामीजी को बहुत खेद हुआ। अन्त में गुरुजी से आकर विस्मृत

प्रसंग पूछना चाहा । विरजानंदजी ने कभी पाठ बार-बार नहीं बताया। दण्डीजी क्रुद्ध होकर झिड़ककर बोले, "जाओ याद करके आओ। यहाँ एक ही पाठ को पढ़ाने के लिए नहीं बैठे।" दो-तीन दिन तक स्वामीजी गुरुजी से प्रार्थना करते रहे परन्तु विरजानन्दजी ने दुबारा नहीं बताया और बहुत खीझ कर बोले, "हमने एक बार तुम्हें कह दिया है कि जबतक पहले का पढ़ा हुआ पाठ नहीं सुना दोगे तुम्हारा पाठ आगे नहीं चलेगा। अब यदि वह प्रसंग तुम्हें स्मरण नहीं आवे तो जमुनाजी में भले ही डूब मरना, मेरे पास न आना।" स्वामीजी ने दण्डीजी के चरण पकड़ लिये और वहाँ से चले आये। विश्राम घाट के समीप वे तपस्या में लीन से होकर प्रसंग याद करने लगे और संकल्प कर लिया कि यदि प्रसंग स्मरण न आया तो यहीं से जमुनाजी में कूद पड़ूंगा। देश, काल, अपनी देह सब कुछ भुलाकर एकाग्र मन हो ऐसे उस प्रसंग में लीन हुए एक स्वप्नावस्था सी हो गई और ऐसा मालुम पड़ा कि मानो कोई व्यक्ति उन्हें प्रसंग पूरा का पूरा बतला रहा है। जब वे सारा प्रसंग सुन चुके और सचेत हो गये तो ऐसा लगा कि मानो अभी सोकर उठे हैं। स्वामीजी की प्रसन्नता की सीमा न रही। दौड़े-दौड़े गुरुचरणों में आये और प्रारम्भ से अंत तक सारा प्रसंग गुरुजी को सुना दिया। स्वामीजी की धारणा और धैर्य को देख विरजानंद भी प्रेम से पुलकित हो गये। उनकी आँखों में खुशी के आंसू डबडबा आये। बड़ी वत्सलता से उन्होंने स्वामीजी को गले लगा लिया और बहुत आशीर्वाद दिये। इस घटना ने स्वामीजी में एक नई शक्ति पैदा कर दी। जब कभी कोई बात उनके लिए दुर्बोध हो जाती वे इसी प्रकार समाधिस्थ होकर उसको प्रत्यक्ष कर लिया करते थे। इस समय स्वामीजी की अवस्था ३६ वर्ष की थी। मुख मण्डल बड़ा द्वीप्त था। अखण्ड ब्रह्मचर्य के कारण एक आकर्षण था। इतनी ओजस्विता उनमें थी कि किसी का भी साहस उनसे उपहास करने का नहीं होता था। बाजारों में जाते, गलियों में जाते, घाट पर भी कई बार पानी लेने जाते और इन स्थानों में सैकड़ों स्त्रियाँ इधर-उधर आती-जातीं थीं परन्तु ढाई वर्ष के निवास काल में कभी किसी ने उन्हें किसी स्त्री की ओर आंख उठाते नहीं देखा। वे सदा नीची दृष्टि रखकर चला करते थे। इस वृत्ति का मथुरा की जनता पर बड़ा ही प्रभाव था।

स्त्री स्पर्श और एकान्त वास

एक दिन की बात है श्री स्वामीजी यमुना तट पर रेती में ध्यान मग्न बैठे थे। एक स्त्री स्नान करके आई, उसने देखा कि सामने एक परमहंस पद्मासन लगाये समाधिस्थ हैं। श्रद्धामयी देवी ने भक्ति भाव से अति निकट आकर स्वामीजी के चरणों पर सिर रखकर नमस्कार किया। भीगे हुए ठंडे कपड़ों के स्पर्श का अनुभव करके स्वामीजी ने जैसे ही आंखे खोलीं उन्होंने पैरों पर एक मां को देखा। वे चौंक पड़े और माता कहते हुए सहसा उस स्थान से उठ गये। स्वामीजी कभी भी स्त्रीस्पर्श नहीं किया करते थे परन्तु उस दिन एक देवी ने ध्यान दशा में उनके पांव पर सिर रख दिया। इसी से वे वहाँ से उठ गोवर्धन की ओर जाकर निर्जन एकान्त स्थान में स्थिति एक टूटे-फूटे मन्दिर में तीन दिन और तीन रात निराहार रहकर चिन्तन में लीन रहे। चौथे दिन पाठ के लिए गुरु सेवा में उपस्थित होने पर जब दंडीजी ने तीन दिन न आने के लिए उनकी भर्त्सना की और कारण पूछा तो स्वामीजी ने प्रायश्चित की कथा आदि से अन्त तक गुरु चरणों में निवेदन कर दी। अपने आदर्श शिष्य की व्रत वार्ता को सुनकर दंडी जी को रोमांच हो आया। उनको साधुवाद दिया और बहुत प्रशंसा की।



गुरु विरजानन्द से शिक्षा ग्रहण करते हुए : शिष्य दयानन्द

गुरुजी का कोप

यदि कभी श्री दंडीजी पठन-पाठन में किसी कारण से क्रुद्ध हो जाते और आवेश में स्वामीजी को ताड़ना आदि भी कर देते तो वे गुरुजी के कोप को उनकी कृपा ही समझते थे। उससे चिड़ते नहीं थे। एक दिन की बात है स्वामी विरजानन्दजी ने आवेश में आकर दयानन्दजी पर लाठी का ऐसा प्रहार किया कि उनकी भुजा पर कड़ी चोट आई परन्तु पीड़ा की कोई परवाह न कर उन्होंने गुरुजी से प्रार्थना की कि महाराज मेरा शरीर कठोर है और आपके हाथ कोमल हैं। मारने से आपको दुःख हुआ होगा इसलिए मुझे मारा न कीजिये। उस दिन के घाव का चिह्न उनकी भुजा पर जीवन भर बना रहा। वे उसे जब भी देखते थे गुरुजी के उपकारों का उन्हें स्मरण हो आता था। दण्डीजी की शिष्य मण्डली में एक आभावान् विद्यार्थी था जिसका नाम था नैनसुख। उसकी धारणा शक्ति बड़ी प्रबल थी। वह दण्डीजी की दया का विशेष पात्र था। अपनी उज्जवल मेधा से उसने सुनते-सुनते ही अष्टाध्यायी और महाभाष्य कंठाग्र कर लिये थे जबकि वह पढ़ा कुछ भी नहीं था। संस्कृत में बोलने का शक्ति भी उसे मिल गई थी। स्वामी दयानन्दजी से उसका बड़ा प्रेम था। एक दिन ऐसा हुआ कि शिक्षण देते समय दण्डीजी कुछ क्रुद्ध हो गये। भर्त्सना की और स्वामीजी को एक लाठी भी लगाई। स्वामीजी तो पहले की तरह अपने पारायण में लगे रहे परन्तु नैनसुख से न रहा गया। हाथ जोड़कर दण्डीजी से उसने निवेदन किया, "स्वामीजी महाराज यह दयानन्द हमारे जैसा कोई सामान्य गृहस्थ नहीं है। ये संन्यासी हैं। इनको तो न बुरा कहना चाहिए न मारना।" दण्डीजी ने उनकी बात सुनकर कहा, 'बहुत अच्छा, आगे से हम इन्हें आदर और प्रतिष्ठापूर्वक पढ़ायेंगे।" पाठ समाप्त होने पर स्वामीजी नैनसुख से बोले, "तुमने गुरुजी से मेरे लिए क्यों कुछ कहा ? उनका हमारे साथ कोई द्वेष थोड़े ही है। ये मारते हैं तो हित-बुद्धि से प्रेरित होकर ही तो मारते हैं।"

गुरु ने निकाल दिया

एक समय की बात है दण्डीजी का कोई दूर का सम्बन्धी मथुरा आया। उसे दण्डीजी से मिलने की बड़ी इच्छा थी। परन्तु दण्डीजी ने यह कह रखा

था कि सिवाय विद्यार्थियों के कोई अन्य व्यक्ति उनके स्थान पर न आये। संबंधी को बड़ी मुश्किल हुई। एक दिन कहीं मार्ग में स्वामी दयानन्दजी से उसकी भेंट हुई। उसने बड़े विनय से गुरुजी से मिलाने की प्रार्थना की। स्वामीजी ने बहुत समझाया कि यदि मैं तुम्हें अपने साथ ले चलूंगा तो वे मुझपर वे अत्यन्त अप्रसन्न हो जायेंगे। परन्तु उस आगन्तुक ने उनके पैर पकड़ लिए और बोला आप उनकी अप्रसन्नता सह लीजिए पर मुझे दर्शन जरूर करा दीजिए। दयानन्दजी स्वभाव से ही बड़े दयालु थे। उसे अपने साथ कुटिया में ले आए। थोड़ी देर तक संबंधी चुप खड़ा रहकर दंडीजी के दर्शन करता रहा और अन्त में स्वामीजी का संकेत पाकर धीरे-धीरे चला गया। स्वामीजी भी उसके साथ विश्राम घाट पर जाने के लिए वहाँ से उतर आए। दोनों उतर ही रहे थे कि स्वामीजी का एक साथी मार्ग में मिल गया। उसने आकर दंडीजी से शिकायत कर दी-—"महाराज आज दयानन्द के साथ आपके पास जो व्यक्ति आया था वह कौन था ? कपड़ों से पंजाबी लगता था।' दंडीजी यह जानकर कि उनके पास कोई चुपचाप आया फिर लौट गया, बड़े क्रुद्ध हुए। स्वामी दयानन्द के आने पर उन्हें बहुत झिड़कियाँ दीं, बोले, "तूने मुझको नेत्रहीन जानकर ऐसा किया। चले जाओ यहाँ से तुम्हारे लिए दरवाजा बन्द कर दिया गया है।" स्वामीजी गुरुजी के पैर पकड़ कर क्षमा मांगने लगे पर कोई सुनवाई नहीं हुई। अन्त में नैनसुख के बहुत आग्रह करने के बाद बहुत दिनों पश्चात् दंडीजी का दरबार स्वामीजी के लिए खुला।

दंडीजी का दरबार एक दिन और उनके लिए बन्द हो गया। एक दिन दयानन्दजी ने गुरुजी की बैठक में झाड़ू देकर कूड़ा एक कोने में इकट्ठा कर दिया और झाड़ू रखकर कूड़ा फेंकने के लिए कोई चीज ढूंढ़ने लगे। इतने में श्री दंडीजी टहलते हुए उधर आ निकले और उनका पैर कूड़े पर पड़ गया। स्वामीजी को आलसी, अनुद्यमी, प्रमादी आदि बातें कहकर उन्होंने स्वामीजी के लिए दरवाजा बन्द कर दिया। उस समय उनका अध्ययन समाप्त होने में थोड़ा समय ही बच रहा था। स्वामीजी नन्दन चौबे और नैनसुख के पास गए और बोले, "गुरुजी वास्तव में कुपित तो नहीं हैं फिर भी कुछ आवेश में आकर उन्होंने मेरा आना-जाना बन्द कर दिया है। अब मेरी विद्या समाप्ति के दिन भी आ रहे हैं। मैं नहीं चाहता कि मेरे बारे में गुरुजी की उदासीनता बनी

रहे। आप दोनों साथ चलकर मेरा अपराध क्षमा करा दीजिये।" दोनों को साथ लेकर स्वामीजी महाराज दंडीजी के पास आए और उनका पैर पकड़कर अपराध के लिए क्षमा मांगने लगे। दंडीजी का क्रोध दूध के उबाल-सा था। वे तुरन्त शांत भी हो जाते थे। स्वामीजी पर तत्काल ही प्रसन्न भी हो गए।

गुरु-दक्षिणा

दयानन्दजी की तर्क शैली पर विरजानन्दजी बहुत मोहित थे। उन्होंने उनको 'कालजिह्व' नाम दिया हुआ था। विरजानन्दजीके अन्य शिष्यों की तर्क शक्ति प्रबल नहीं थी। दंडीजी जैसे पढ़ाते सुनते चले जाते थे, परन्तु जब दयानन्द अध्ययन करने आते तो बीच में बराबर प्रश्नोत्तर छिड़ जाते. तर्क की झड़ी लग जाती और युक्ति-प्रतियुक्तियों का तार बंध जाता था। गुरुजी प्रायः कह दिया करते थे, "दयानन्द आज तक मैंने बहुत से विद्यार्थियों को पढ़ाया परन्तु जो आनन्द तुम्हें पढ़ाने में आता है वह अन्य किसी को भी आजतक पढ़ाने में नहीं आया।" दंडीजी अपने प्रेम के पुनीत पात्र दयानन्द को पाठ काल के अतिरिक्त समय देकर और भी बहुत सारे रहस्य समझाया करते थे। एकान्त समय में गुरु-शिष्य में देर तक बातचीत होती रहती थी। उसमें प्रायः गूढ़ तत्वों की ही चर्चा चला करती थी। इस प्रकार इस अध्ययन काल में स्वामी विरजानन्दजी महाराज ने अपने अन्तःकरण में संचित किए गए सभी रत्न श्री स्वामीजी को सौंप दिए और वे अति सन्तुष्ट हुए। ढ़ाई वर्ष तक गुरु चरणों में स्वामीजी ने अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्त सूत्र और अनेक पुस्तकों का अध्ययन किया। अब उनकी इच्छा हुई कि गुरु महाराज की आज्ञा लेकर देशाटन करें। पर चलने से पहले कोई दक्षिणा तो देनी चाहिए न। क्या दें? न तो दंडीजी ही द्रव्य कुछ लेते थे और न स्वामी दयानन्द के पास कुछ था ही। वे कुछ लौंग ले गए। और चरणों में रखकर के नमस्कार करके बोले, "महाराज आपने मुझ पर असीम कृपा करके मुझे विद्या का दान दिया है उसके लिए मेरा रोम-रोम आपका धन्यवाद करता है। आज आपका आज्ञाकारी प्रिय शिष्य आपसे आज्ञा लेकर देशाटन के लिए जाना चाहता है। इस सेवक के पास ऐसी कोई वस्तु नहीं जो आपको भेंट की जाए। ये थोड़े से लौंग हैं जो सम्मानपूर्वक श्री-सेवा में समर्पित हैं।"

जीवन दान

सच्चे गुरुओं के लिए सच्चे शिष्य पुत्र से भी अधिक प्रिय हुआ करते हैं और दण्डी के तो कोई सन्तान भी नहीं थी इसलिए उनके लिए तो शिष्यों से ज्यादा कुछ था ही नहीं। बड़े वात्सल्य के साथ शिष्य के सिर को स्पर्श करते हुए दंडीजी बोले, "वत्स मैं तुम्हारे लिए मंगल कामना करता हूँ। ईश्वर तुम्हारी विद्या को सफल करे परन्तु दक्षिणा में यह लौंग नहीं कुछ और मांगना चाहता हूँ जो तुम्हारे पास है।" स्वामीजी बोले—"यह सेवक आपके चरणों का दास है जो भी आदेश होगा आजीवन निभाऊंगा।" यह सुनकर दंडीजी का रोम-रोम हर्षित हो गया और वे बोले, "वत्स ! भारत देश में दीन-हीन जन अनेक दुःख पा रहे हैं जाओ उनका उद्धार करो। मत-मतान्तरों के कारण प्रचलित कुरीतियों का निवारण करो। आर्य जनता की बिगड़ी हुई दशा सुधारो। आर्य सन्तान का उपकार करो। ऋषि शैली प्रचलित करके वैदिक ग्रंथों के पठन-पाठन में लोगों में प्रवृत्ति पैदा करो। लोक हित की कामना से क्रियात्मक जीवन बिताओ। प्रिय पुत्र ! गुरु दक्षिणा में मुझे यह वस्तु दान करो अन्य किसी संसारिक पदार्थ की मुझे चाह नहीं है। "दयानन्दजी ने गुरुदेव के एक-एक वचन को नत-शिर स्वीकार किया और स्वामी दयानन्द सरस्वती गुरूजी का आशीर्वाद पाकर गुरुजी के चरण-कमलों का प्रगाढ़ आलिंगन करके वहाँ से विदा हुए और आगरे जाने की तैयारी करने लगे। चलते समय शिष्य को दंडीजी ने जो अन्तिम बात कही वह यह थी, "दयानन्द! स्मरण रखना, मनुष्य कृत ग्रंथों में परमात्माओं और ऋषि मुनियों की निन्दा भरी पड़ी है परन्तु आर्ष ग्रंथों में इस दोष का लेशमात्र भी नहीं है। आर्ष और अनार्ष ग्रन्थों की यही बहुत बड़ी कसौटी है, इसे तुम कभी न छोड़ना।" संसार वेदों को भूल चुका है जाओ सर्वत्र वेद-ज्ञान फैलाकर मेरे स्वप्न पूर्ण करो।

सच्चे शिष्य दयानन्द ने अपने गुरू के ऋण को प्राण देकर भी उतारा। धन्य हैं ऐसे शिष्य और पूज्य हैं ऐसे गुरू। :



दयानन्द ! मुझे गुरु-दक्षिणा में लौंग नहीं चाहिएँ। गुरु-दक्षिणा देनी है तो···
संकल्प करो कि तुम 'वेद' ज्ञान का प्रकाश संसार में फैला कर अविद्या-अन्धकार समाप्त करोगे.........

कार्य क्षेत्र में अवतरण—२

जिस समय गुरू से आशीर्वाद लेकर दयानन्दजी ने कार्य क्षेत्र में पांव रखा, भारत देश अज्ञान, पराधीनता, शत्रु और अन्य दु:खों के कारण अत्यन्त व्याकुल था। हिन्दू अनेक सम्प्रदायों में बंटे हुए थे और सभी सम्प्रदायों में आपस में बहुत भिन्नता थी। इस प्रकार भारत का प्राचीन आर्य धर्म, धर्म-हीन और केवल अनाचारमय था। धर्म की प्रेरिका शक्ति समाप्त हो चुकी थी। दूसरी ओर यूरोपियन जातियाँ शिकार के लिए अपनी बाहें फैला रही थीं। यूरोपियन जातियां अपने साथ दो चीजें लाईं, ईसाइयत और पाश्चात्य सभ्यता। दूसरी तरफ इस्लाम का भी बड़े जोरों में प्रचार हो रहा था। उसमें अकबर आदि की नीतियों के कारण और भी तीव्रता आ गई। इस प्रकार एक तरह से इस्लाम और ईसाइयत दोनों ही भारत देश को निगलने के लिए प्रयत्नशील थे और ईसाइयत के कीटाणु तो हवा और पानी के साथ इस शरीर में प्रवेश कर रहे थे। ब्रह्म समाज आदि जो नये समाज आये उन्होंने इसका अनुभव तो किया परन्तु रोकने का जो यत्न किया वह यह था कि ईसाइयत के कीटाणुओं से युक्त जल को थोड़ा सा स्वादु बना दिया जाये।

आगरे में प्रचार

ऐसी दशा में जब कि कांटों और झाड़ियों के सिवाय कुछ नहीं दिखाई देता था, जंगल की राहों में कांटों और झाड़ियों में उलझ-उलझकर परीक्षा में सफल होकर निकले हुए तेजस्वी दयानन्द ने इन विषाक्त कांटों और झाड़ियों का भी सफाया करने का बीड़ा उठाया। स्वामीजी वैशाख संवत् १९२० के अन्त में आगरा आये। वहां रहकर अनेकों गृहस्थों और अन्य व्यक्तियों को सदुपदेश दिया। वे सब स्वामीजी के परमभक्त बन गये। आगरे में स्वामीजी ने भगवत् गीता की कथा करनी आरम्भ की। गीता के अर्थों का वर्णन करने की शैली, उनका श्लोक उच्चारण और व्याख्या पद्धति ऐसी

थी कि श्रोता मोहित होते चले जाते थे । यह कथा एक मास से अधिक काल तक प्रतिदिन रात को दो घंटे होती रही । वहीं स्वामीजी ने संध्या की एक पुस्तक का सम्पादन किया । स्वामीजी के आदेश सुनकर बहुत से व्यक्तियों ने मूर्तिपूजन छोड़ दिया । उन दिनों स्वामीजी लिहाफ के विना दूसरा कोई सिला हुआ वस्त्र नहीं पहनते थे । महाभाष्य आदि पुस्तकें उनके पास थीं और उन्हीं दिनों भागवत खण्डन पर एक पाखण्ड खण्डन नामक पुस्तक उन्होंने संस्कृत में लिखी । वेदार्थ विचार करने की आपकी बड़ी इच्छा थी । कहा जाता है पंडित सुन्दरलाल ने जयपुर से वेद मंगवाकर स्वामीजी को दिये । उन दिनों स्वामीजी नियमपूर्वक योगाभ्यास करते रहते थे । किसी दिन पहरों अचल भाव से ध्यानावस्थित रहते थे। आगरे में लोगों ने उनको १८ घंटे तक समाधिस्थ देखा था ।

ग्वालियर में भागवत खण्डन

आगरे से धौलपुर, आबू पर्वत होते हुए स्वामीजी ग्वालियर में आये । उन दिनों महाराजा ने राजधानी में भागवत सप्ताह बड़ी धूमधाम से बिठलाया था । दूर-दूर के पंडित भी बुलवाये गये थे । महाराजा ने अपने कर्मचारी भेजकर भागवत सप्ताह का माहात्म्य श्री स्वामीजी से भी पुछवाया । उत्तर में स्वामीजी ने कहा ऐसे कार्यों के फल सिवाय दुख के और कुछ नहीं होते । विश्वास न हो तो करके देख लो और यह भी कहला दिया कि गायत्री का पुरश्चरण करो । स्वामीजी निमन्त्रित होने पर भी भागवत सप्ताह में सम्मिलित नहीं हुए । जिन दिनों भागवत सप्ताह हो रहा था श्री स्वामीजी दूसरी ओर भागवत खण्डन पर व्याख्यान देने लगे । उनके व्याख्यानों में भारी भीड़ होने लगी । लोगों ने सत्यता को ही स्वीकार किया । अन्त में परमात्मा की लीला ऐसी हुई कि महारानी का पंचमासिक गर्भ गिर गया । विशूचका महारोग बड़े भयंकर रूप से सारे देश में फैला । छोटे राजकुमार जिनकी दीर्घायु की कामना से भागवत सप्ताह बिठाया गया था और जिस कुमार को सप्ताह समाप्ति पर पंडितों ने आशीर्वाद दिया था उसका देहान्त हो गया । इन सब बातों ने भी लोगों के मन पर बड़ा प्रभाव डाला स्वामीजी ने रोज शास्त्रार्थ के लिए विद्वानों को ललकारा और बहुत से विज्ञापन भी दिये पर

कोई उनके सामने नहीं आया।

जयपुर में वैष्णवों से शास्त्रार्थ

स्वामीजी ग्वालियर से चलकर करौली और जयपुर आये। जयपुर में भी शास्त्रार्थ इत्यादि हुए और सभी शास्त्रार्थों में स्वामीजी की विजय रही। इनका व्याख्यान सुनने के लिए लोगों में प्रबल उत्कंठा होती थी। स्वामीजी चार मास के लगभग वहां टिके। उन्होंने शिव की व्याख्या में हमेशा निराकार ईश्वर का ही वर्णन किया और प्रतिमा पूजन का जोरों से खण्डन किया। उन्हीं दिनों महाराजा रामसिंह जी वैष्णवों और शैवों के शास्त्रार्थ की तैयारी करा रहे थे। उस शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्दजी ने शैव सम्प्रदाय के पक्ष का अवलम्बन करके वैष्णवाचार्यों के साथ वाद किया। स्वामीजी ने जब वैष्णव धर्म की पुस्तकों से प्रमाण दे देकर उस सम्प्रदाय की समालोचना की, वैष्णव परास्त हो गये। लोगों ने कंठियां तोड़ दीं। महाराजा रामसिंह भी शैव बन गये। इनके इस शास्त्रार्थ से स्वामीजी के पांडित्य का सिक्का पंडित मात्र पर बैठ गया। उस राज्य के अनेक ठाकुर उनके भक्त हो गये।

पुष्कर के मेले में प्रचार

वहां से स्वामीजी पुष्कर पहुँचे। पुष्कर में एक वैंकट शास्त्री नाम के विद्वान् थे। लोगों ने उनसे, स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने का आग्रह किया परन्तु शास्त्री जी टालते रहे। अन्त में एक दिन स्वामीजी खुद उनके पास जा खड़े हुए। उस समय कोई तीन-चार सौ ब्राह्मण वहां एकत्र हो गये थे। भागवत को लेकर बड़ा वाद-विवाद हुआ और अन्त में शास्त्रीजी बहुत ही प्रभावित होकर उन्हें अपने अघोरी गुरु से मिलाने ले गये। वह अघोरी बड़ा हट्टा-कट्टा लम्बा-चौड़ा मनुष्य था। जो कोई उसके पास जाता उसे वह पत्थर उठा-उठाकर मारा करता, गालियां देता, मृतकों की देहों को चिताओं पर से उठा कर खा जाया करता था और संस्कृत भाषा का बहुत बड़ा विद्वान् था। स्वामीजी देर तक बातें करते रहे। अन्त में अघोरी ने कहा, 'स्वामी दयानन्दजी का पक्ष सर्वथा सत्य है, इनसे कोई झगड़ा मत किया करो।' पुष्कर में उन दिनों मेला चल रहा था। उसमें स्वामीजी महाराज के

उपदेश हुआ करते थे और उनसे लोग इतने प्रभावित हुए कि लोगों ने कंठियां उतार-उतार कर मन्दिर के कोने से ढेर लगा दीं। ब्रह्माजी के मन्दिर के महन्त श्री मानपुरीजी थे। वे इनके बड़े भक्त बन गये। एक दिन बहुत से ब्राह्मणों ने स्वामीजी को शास्त्रार्थ करने के लिए गौ-घाम पर बुलाया। स्वामीजी तो तैयार थे ही तुरन्त वहां पहुँच गये। शास्त्रार्थ थोड़ी ही देर चला था कि पंडितों के पैर उखड़ गये। इतने में ही कई लठैत बीच में आ कूदे और स्वामीजी को गाली बकने लगे। वे उस समय ऊधम मचाना चाहते ही थे कि मानपुरीजी वहां आ पहुँचे। उन्होंने डांट-डपटकर उन लोगों को वहाँ से खदेड़ दिया।

दयानन्द पुराण

महाराज पुष्कर में विराजमान थे— एक दिन बूंदी के राज-पण्डित आये और मूर्ति-पूजा सिद्ध करने के लिये श्लोक पढ़ा। महाराज ने तत्क्षण एक श्लोक रच कर मूर्ति-पूजा का खण्डन किया। पण्डित ने पूछा कि यह किस ग्रन्थ का श्लोक है ? तो उन्होंने कहा कि पहले आप बताइए कि आपका श्लोक किस ग्रन्थ का है ? पण्डित ने कहा कि पद्म-पुराण का। महाराज ने कहा कि हमारा श्लोक दयानन्द पुराण का है। पण्डित कहने लगा कि वह कैसा पुराण है ? महाराज ने उत्तर में कहा कि तुम्हारे पुराणकर्त्ता तो अब जीवित नहीं हैं और दयानन्द—पुराण का कर्त्ता तुम्हारे सम्मुख और हमारे श्लोक के अनुकूल वेदादि शास्त्रों के अनेक प्रमाण हैं। यह सुन कर चुप हो गया।

अजमेर में पादरियों से टक्कर

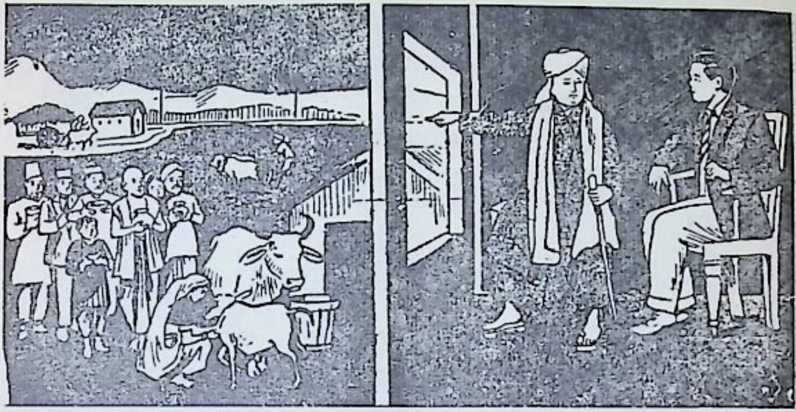
पुष्कर से स्वामीजी अजमेर पहुँचे। अजमेर आते ही विज्ञापन लगवा दिया कि मूर्ति पूजा आदि विषयों पर यदि किसी को शंका हो तो आये, समाधान किया जायेगा। यहाँ उन्होंने शैव सम्प्रदाय का भी बहुत खण्डन किया। अजमेर से स्वामीजी का पादरी रोबिन्सन, ग्रे और शूलब्रेंड के साथ जीव, ईश्वर, सृष्टिक्रम और वेद विषय पर तीन दिन तक संवाद होता रहा। पादरियों से कोई उत्तर नहीं बन पाया। बाद में पादरी शूलब्रेंड स्वामीजी से बोला कि ऐसी बातें करेंगे तो आप जेल में चले जायेंगे। स्वामीजी मुस्कराते

हुए बोले, "सत्य के लिए जेल जाना कोई लज्जाजनक बात थोड़ी ही है। मैं इन बातों से सर्वथा निर्भय हूँ।" अजमेर के कमिश्नर श्री डेविडसन भी स्वामीजी से मिले। बातचीत के बीच में स्वामीजी बोले, "जैसे आपके शासन में मत-मतान्तरों के लोग भोली प्रजा को नोच-नोचकर खा रहे हैं, आपका धर्म है इसका कोई प्रबन्ध करके प्रजा की रक्षा करें।" कमिश्नर ने उत्तर दिया, "यह विषय धर्म से सम्बन्ध रखता है। शासक लोग कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकते।"

कर्नल ब्रुक्स से गौरक्षा पर वार्ता

उन दिनों कर्नल ब्रुक्स गवर्नर जनरल के एजेंट थे। वे गेरुए कपड़े वालों से बहुत चिढ़ा करते थे। एक दिन वे लाला बंशीलाल के उद्यान में आये। स्वामीजी उस समय कुर्सी पर बैठे थे। समीप उपस्थित लोगों ने दूर से कर्नल ब्रुक्स को आते देखा तो स्वामीजी को कुर्सी हटा लेने को कहा। परन्तु स्वामीजी ने उलटे कुर्सी और भी आगे कर ली। कर्नल भीतर आ गये। लोग और भी घबड़ा गये। परन्तु स्वामी जी बोले डरो नहीं, शांत रहो। पास आते ही कर्नल टोपी उतार कर स्वामीजी की ओर बढ़ा। दोनों ने हाथ मिलाकर एक-दूसरे का सम्मान किया और फिर दोनों में बातचीत होने लगीं। स्वामीजी ने उनसे गोवध रोकने के बारे में विशेष बातचीत की। उन्होंने अगले दिन बंगले पर आने का निमंत्रण दिया। दूसरे दिन स्वामीजी कर्नल की गाड़ी में उसके बंगले पर गये। कोई पौन घंटा भर गोरक्षा विषय पर बातचीत होती रहीं पर अन्त में कर्नल बोले, "स्वामीजी महाराज गो-वध बन्द कराना मेरे अधिकार में नहीं हैं। मैं आपको चिट्ठी देता हूँ, आप लाट से मिल लें।" कर्नल इतने प्रभावित हुए कि महाराजा रामसिंहजी को भी उन्होंने लिखा कि "आपने स्वामीजी से न मिलकर बहुत कुछ खोया है।" इस पत्र को पढ़कर रामसिंहजी को बहुत ही दुःख हुआ और वे स्वामीजी को निमन्त्रित करने का प्रयत्न करने लगे।"

वहाँ से स्वामीजी कृष्णगढ़ आये और वहां से कई स्थानों पर होते हुए जयपुर चले गये। अचरौल के ठाकुरजी ने स्वामीजी के पधारने का समाचार महाराज को दे दिया। महाराजा ने राज मन्दिर पधारने की प्रार्थना की



गौ-रक्षा के लिये ऋषि ने जो कार्य किया वह स्तुत्य है। कर्नल ब्रुक्स से गौ-रक्षा पर वार्ता करते हुए गो-रक्षक दयालु दयानन्द

परन्तु स्वामीजी ने कहा यदि महाराजा कोई बात करना चाहें, तो किसी समय यहाँ आयें। तत्पश्चात् महाराजा ने ठाकुर रणजीतसिंहजी को भेजा। उन्होंने कई साथी मित्रों के साथ आकर स्वामीजी से राजमन्दिर चलने का अत्याग्रह किया। स्वामीजी पहुँच भी गये। परन्तु महाराजा रामसिंह अन्तः-पुर में किसी काम से गये हुए थे। इसलिए जब एक चेले ने आकर कहा कि इस समय महाराजा का आना न हो सकेगा तो स्वामीजी वापस चले आये, फिर कभी नहीं गये।

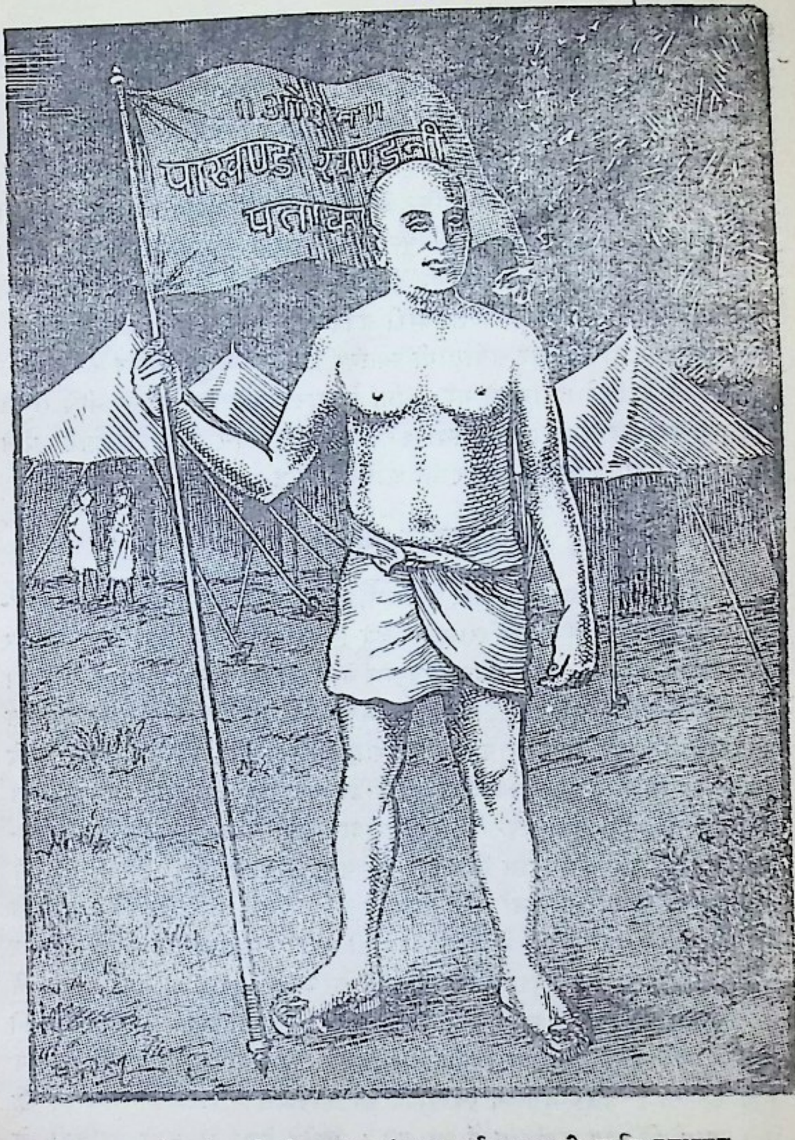
गुरु से अन्तिम भेंट

जयपुर से स्वामीजी आगरा आये वहाँ उन दिनों बड़े समारोह के साथ एक भारी दरबार होने वाला था। दूर-दूर से राजे-महाराजे बुलाये गये थे। स्वामी जी ने भी धर्म-उपदेश के लिए ऐसे समय को बहुत उपयुक्त समझा। मौखिक उपदेश तो दिया ही, ७-८ पृष्ठ की एक छोटी-सी पुस्तक भागवत खण्डन पर लिखी। इसकी कई हजार प्रतियां छपवाकर वहाँ बंटवा दीं और कई हजार

कुम्भ मेले के अवसर पर हरिद्वार में बांटने के लिए साथ ले गये। आगरे से मथुरा आये और गुरुचरणों में जाकर उन्हें नमस्कार किया। उन्हें एक स्वर्ण मुद्रा और एक मलमल का थान भेंट किया। भागवत खण्डन पुस्तक का परिचय भी कराया। गुरुदेव अपने सुयोग्य शिष्य से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें आशीर्वाद दिया। स्वामीजी कई दिनों तक गुरु सेवा में रहकर सन्देहास्पद विषयों को पूछते रहे। शास्त्रीय तत्व समझते रहे और फिर हरिद्वार जाने के लिए उनसे अनुमति मांगी। स्वामीजी का गुरुजी से यह अन्तिम मिलन था।

हरिद्वार में पाखंड-खंडिनी-पताका

स्वामीजी मथुरा से मेरठ होते हुए हरिद्वार आये। कुम्भ स्नान से एक मास पूर्व ही वे हरिद्वार पहुँच गये और सप्त स्रोत के पास गंगा की रेती में छप्पर डालकर मध्य में "पाखंड-खंडिनी-पताका" गाड़ दी। उनके सामने उस समय एक ओर आकर्षक उतुंग हिमालय था और दूसरी ओर स्वार्थ, अज्ञान और दंभ की लीला से बिगड़ी हुई मनुष्य प्रवृत्ति। स्वामी दयानन्द ने मेले में एकत्रित हुए हिन्दू समाज को देखा और सम्पूर्ण समाज को एक ही बीमारी का शिकार पाया। स्वामीजी महाराज के आश्रम पर झूलते हुए निराले झंडे को देखकर लोग सैकड़ों की संख्या में भीतर चले जाते और उनमें से बहुतेरे स्वामीजी की बातों को स्वीकार भी कर लेते। उस सारे महामेले में स्वामीजी का ही नाम गूंज रहा था। आजतक लोगों ने किसी संन्यासी के मुख से मूर्ति पूजन का खण्डन, श्राद्धों का निराकरण और अवतारों की निरर्थकता और पर्व स्नान माहात्म्य की असत्यता की बात नहीं सुनी थी। बहुतों ने उन्हें नास्तिक कहा, बहुतों ने उनकी निन्दा की, बहुत से ब्राह्मण और साधु शास्त्रार्थ करने के लिए उनके पास गये भी। पर दो-एक प्रश्नोत्तर में ही निरुत्तर होकर लौट आये। कुछ राजे-महाराजे भी स्वामीजी के दर्शन के लिए आये। यहाँ पर काशी के सुप्रसिद्ध पंडित स्वामी विशुद्धानन्दजी से शास्त्रार्थ हुआ। स्वामी जी ने अपने वास के दौरान बीसियों वादियों को जीता। सैकड़ों जिज्ञासुओं को समझाया, सैकड़ों पुस्तकें भागवत खण्डन की बाँटी परन्तु परिणाम देखकर उनके मन में एक उदासीनता की रेखा सी उमड़ आई। हजारों साधुओं का



पाखंड खंडन के लिए कृत संकल्प सर्वस्व त्यागी ऋषि दयानन्द

मेला था परन्तु सारा बल लगाने पर भी एक भी सत्य का सहायक साधु संन्यासी उन्हें न मिला। ऐसा एक भी संन्यासी न दिखाई दिया जो राष्ट्र प्रेम और पर पीड़ा की अनुभूति से युक्त हो। उस समय सचमुच स्वामीजी ने अपने आपको अकेला अनुभव किया। उन्होंने सोचा अभी यज्ञ में कुछ कमी है। वह सर्वोपरि यज्ञ करने के लिए सिद्ध हो गये और अपने साथ की सारी सामग्री वहीं छोड़ दी। महाभाष्य की एक पुस्तक एक स्वर्ण मुद्रा और मलमल का एक थान गुरु चरणों में मथुरा भेज दिया। डेरे पर जो भी कुछ था भिखारियों को बांट दिया। एक मात्र कोपीनधारी बनकर सांसारिक वस्तुओं के इस हलके से बन्धन को भी काटकर सर्वत्यागी स्वतन्त्र दयानन्द मनुष्य जाति के बन्धनों को काटने के लिये तैयार हो गये। गंगा के पार चण्डी के पर्वत के नीचे रेतीले किनारे पर कुछ समय तक तपस्या करके उन्होंने अपने आपको आगे आने वाले धर्म महायुद्ध के लिए और भी अधिक तैयार कर लिया।

प्रचार की धूम

वहाँ से ऋषिकेश, हरिद्वार, कनखल, लंढौर आदि होते हुए स्वामीजी कर्णवास आये और वहाँ से फर्रुखाबाद पहुँचे। फर्रुखाबाद में तीन दिन रहकर फिर चासी आये। वहाँ पंडित नन्दराम ने लोगों को शंखचक्र आदि से दीक्षा देकर वैरागी बनाने का कोलाहल मचा रखा था। कोई २०-२५ सुपठित ब्राह्मण और जाट मिलकर पंडित नन्दराम को स्वामीजी की सेवा में ले आये परन्तु स्वामीजी का पांडित्य देखते ही पंडित नन्दराम वहाँ से खिसक गया और फिर बहुत बुलाने पर भी नहीं आया। वहाँ से चलकर स्वामीजी रामघाट आये। वहाँ टीकाराम नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसके मुंह से गायत्री का उच्चारण सुना और संध्या करने के लिए प्रेरित करके स्वामीजी ने पूरी संध्या अपने हाथों से लिख दी। धीरे-धीरे स्वामीजी से उपदेश लेकर पंडित टीकाराम अपने पुराने पूजा पाठ के कामों से विरक्त हो गया। वहां से वे कर्णवास आये और अपने सारे यजमानों को इकट्ठा करके स्वामीजी की विद्वत्ता की बात उन्हें बताई और कह दिया "अब आपके मन्दिर में पूजा मैं नहीं करूंगा।" इधर ये लोग स्वामीजी को कर्णवास में लाने की सोच ही रहे थे। स्वामीजी स्वयं कर्णवास में आ गये। उन्होंने देखा कि सभी क्षत्रियों ने

यज्ञोपवीत नहीं पहना हुआ। उन्हें यज्ञोपवीत दिये। वहाँ से स्वामीजी अनूपशहर आये। वहाँ एक नवलजंग नामक एक महामल्ल था। वह उनका परम-भक्त बन गया। एक दिन अचानक छ:-सात वाममर्गी हाथ में शराब की बोतलें लिये ऊट-पटाँग बकते हुए स्वामीजी के स्थान की ओर आये और कहने लगे, "आज हम दयानन्द को वारुणी स्नान कराकर ही छोड़ेंगे।" और चिल्लाकर बोले, "अरे दयानन्द निकल बाहर, तुझे शुद्ध करें, वीर बनायें।" स्वामीजी ने जब इन लोगों को इस प्रकार शराब में मस्त और बड़बड़ाते हुए आते देखा, उन्होंने नवलजंग को बुलाया और बोले, "ज़रा आकर इनका नशा तो उतार जाना।" जैसे ही नवलजंग आया सब सिर पर पैर रखकर भागे। फिर कभी नहीं आये।

यहाँ अम्बादत्त नाम का एक मथुरावासी पंडित भागवत कथा करने के लिए आया हुआ था। उससे स्वामीजी का बड़ा मनोरंजक शास्त्रार्थ हुआ जिसमें वह बुरी तरह पराजित हुआ। इसका अन्य लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपने सब शालीग्राम गंगा में बहा दिये और कंठियाँ तोड़ डालीं। यहाँ स्वामीजी ने रामलीला का भी खण्डन किया।

पान में विष

उन दिनों सैयद मुहम्मद वहाँ के तहसीलदार थे। वे भी एक प्रकार से स्वामीजी के भक्तों में ही सम्मिलित हो गये। एक दिन एक ब्राह्मण स्वामीजी के पास आया और उन्हें सम्मान के साथ एक पान दिया सरल स्वभाव होने के कारण उन्होंने पान मुंह में रख लिया और ज्यों ही उसका रस लिया वे जान गये कि इसमें विष है। उस ब्राह्मण से तो उन्होंने कुछ नहीं कहा, यौगिक क्रिया करके उस विष को बाहर निकालने के लिए वे गंगा पार चले गये। इधर जब सैयद मुहम्मद को पता चला तो उसने उस ब्राह्मण को पकड़ मंगवाया और जेल में डाल दिया और स्वामीजी के दर्शनार्थ चला। मार्ग में उसके हृदय में वे विचार आये कि आज मैंने स्वामीजी के शत्रु को दण्ड देकर बदला चुकाया है ये ज़रूर आशीर्वाद देंगे। परन्तु ज्यों ही वे स्वामीजी के पास पहुँचे उन्होंने मुंह घुमा लिया और उससे बोले तक नहीं। तहसीलदार को बड़ा

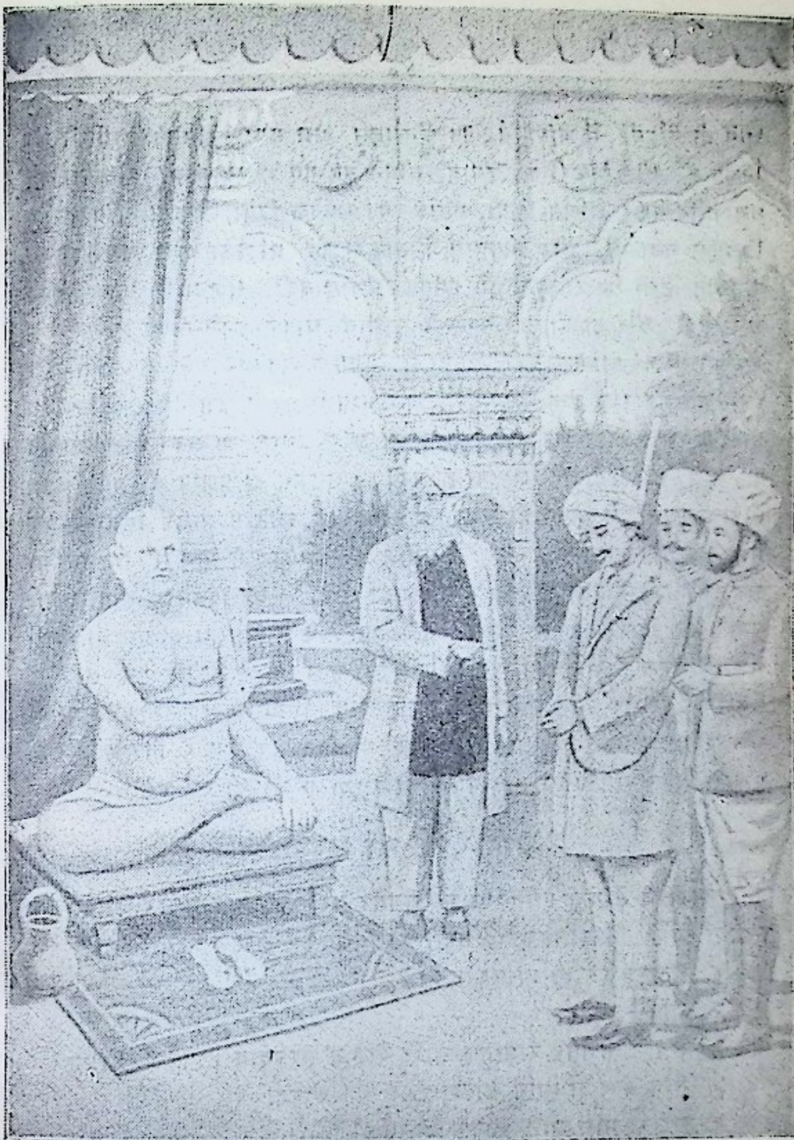
आश्चर्य हुआ। पूछने पर स्वामीजी बोले आज आपने एक मनुष्य को कैद किया है। मैं संसार में मनुष्यों को बंधवाने नहीं आया अपितु कैद से छुड़वाने आया हूँ। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते तो, हम अपनी श्रेष्ठता क्यों छोड़ें ? यह सुनकर तहसीलदार रोमांचित हो गया। उन्होंने आज तक क्षमा का ऐसा धनी, शान्त पुरुष दूसरा नहीं देखा था। उसने जाते ही ब्राह्मण को मुक्त कर दिया।

साकारवाद पर शास्त्रार्थ

स्वामीजी रामघाट आए और गंगा की बाजू पर आसन जमा लिया। बाद में बनखंडी महादेव में चले गए और बहुत से पण्डित वहाँ पर भी शास्त्रार्थ आदि के लिए आए। जिनको स्वामीजी ने युक्ति और प्रमाणों से परास्त किया। सबसे पहले शास्त्रार्थ कृष्णानन्द जी के साथ हुआ जो तीन दिन तक चला। पहले तो वेदांत को ही लेकर के शास्त्रार्थ हुआ पर एक दिन ऐसा हुआ कि शास्त्रार्थ के समय किसी ने कृष्णानन्दजी से कहा, "महाराज महादेवजी पर जल चढ़ा आऊँ।" स्वामीजी ने बीच में ही कह दिया, "वहाँ तो पत्थर है। महादेव कहाँ है ?" इससे चिढ़कर कृष्णानन्दजी ने साकारवाद को शास्त्रार्थ का विषय बनाया और स्वामीजी ने ऐसी युक्तियाँ और प्रमाण दिये कि कृष्णानन्दजी को चुप हो जाना पड़ा। प्रायः सभी लोग स्वामीजी के उपदेशों की सत्यता को स्वीकार तो कर लेते परन्तु आजीविका को देखते हुए इन वेद विरोधी कर्मों को छोड़ने का साहस नहीं करते थे।

गायत्री का प्रचार

रामघाट से स्वामीजी बेलौन और खेरा आए। वहाँ जो भी कोई स्वामीजी की संगति में आता उसे नित्य कर्म करने के लिए बल देते। जो यह कहता कि मुझे गायत्री पाठ नहीं आता, उसे स्वयं सिखाने लग जाते। वहाँ पंडित इन्द्रमणि नामक एक सज्जन थे। उन्होंने गायत्री की अनेक प्रतियां लिखकर स्वामीजी के पास रख दीं। स्वामीजी उन्हें लोगों में बांटते थे और उनके नीचे हजार का अंक लिख देते थे। जिसका अर्थ यह था कि हजार बार जप करना चाहिए। वहां से स्वामीजी कर्णवास आए। उनके



पान में विष देने वाले को जब तहसीलदार गिरफ्तार कर ऋषि सम्मुख लाये तब दयानन्द ने कहा, छोड़ दो इसे । मैं संसार को कैद कराने नहीं कैद से छुड़ाने आया हूँ ···

ग्राते ही पंडितों में शास्त्रार्थ का कोलाहल मच गया। फिर स्वामीजी की विजय हुई ग्रौर ठाकुरों के उत्साह चौगुने बढ़ गए। स्वामीजी ने बहुतों को यज्ञोपवीत देकर दीक्षित किया, गायत्री का उपदेश दिया, ठाकुरों में यह काम बिलकुल नया था, ग्रौर कर्णवास के ठाकुरों की प्रतिष्ठा बहुत थी। इसका फल यह हुग्रा कि राजपूतों में इसका प्रभाव बड़ी उत्तेजना के साथ फैलता चला गया ग्रौर दो-दो सौ कोस से राजपूत ग्राकर उनसे दीक्षा लेने लगे। राजपूत पंक्ति बांधकर बड़ी संख्या में गंगा के किनारे खड़े हो जाते ग्रौर स्वामीजी महाराज उन्हें यज्ञोपवीत देकर गायत्री का उपदेश देते। यहां पंडित हीरावल्लभ से जो वहुत बड़े विद्वान् थे ग्रौर जिन्हें ऋग्वेद ग्रौर यजुर्वेद कंठाग्र थे स्वामीजी का शास्त्रार्थ हुग्रा। लगभग दो हजार की भीड़ थी। हीरावल्लभजी ने ग्राते ही सभा के बीच एक छोटे से सुन्दर सिंहासन पर मूर्तियां स्थापित कर ऊँचे स्वर से प्रतिज्ञा की, "ग्रब मैं यहां से तब उठूँगा जब स्वामीजी के हाथ से इन्हें भोग लगवा लूँगा। छः दिन तक वाद चलता रहा। एक दिन तो ९ घंटे बिना विराम शास्त्रार्थ होता रहा। ग्रन्त में सारी सभा के समक्ष उसने कहा, 'स्वामीजी जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य है, प्रमाणित है ग्रौर उसने उसी समय मूर्तियों को सिंहासन से उठाकर गंगा में फेंक दिया ग्रौर उनकी जगह पर वेद स्थापित कर दिए। हीराबल्लभ के परास्त हो जाने से ग्रनेक सज्जनों की मूर्तिपूजा से ग्रास्था उठ गई।

ग्राठ गप्पों का खण्डन

स्वामीजी ने यहाँ सूर्यग्रहण के ग्रवसर पर एक नया प्रचार ग्रान्दोलन चलाया जिसमें निम्नलिखित ८ गप्पों का विशेषकर खण्डन किया।

१. ग्रठारह पुराण व्यासकृत हैं।
२. मूर्ति पूजन।
३. शैव-शाक्त ग्रौर रामानुज ग्रादि वैष्णव सम्प्रदाय।
४. तन्त्र ग्रन्थ वाममार्ग ग्रादि।
५. मदिरा मांस ग्रादि मादक वस्तुएँ।
६. व्यभिचार।
७. चोरी करना।

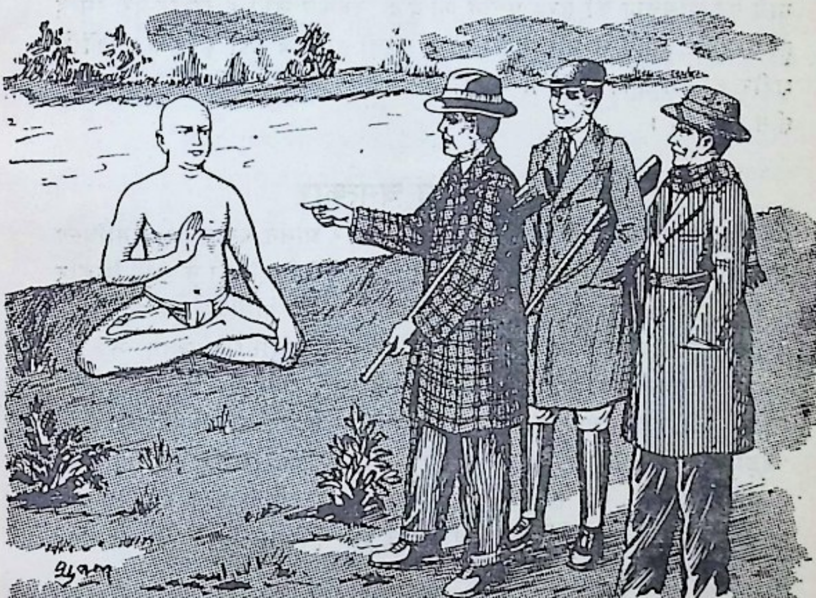
८. छल-कपट, अभिमान, झूठ आदि।

एक सज्जन के पूछने पर कि ग्रहण लगा हो तो भोजन किस समय करना चाहिए। स्वामीजी ने उत्तर दिया जब भूख लगे खा लेना चाहिए।

लाला इन्द्रमणिजी ने स्वामीजी से एक दिन कहा, आप अवधूत होकर इस खण्डन-मण्डन के झगड़े में क्यों फँस गए हैं। स्वामीजी ने उत्तर दिया, "मेरे लिए यह कार्य झगड़ा नहीं है अपितु ऋषि ऋण का उतारना है। आर्य सन्तान को ऋषियों के मार्ग से हटाकर कुपथगामी बना दिया गया है। मैंने प्रण कर लिया है कि इसे सन्मार्ग पर लाने का प्राण-पण से प्रयत्न करूँगा।"

ब्रह्मचर्य का प्रताप

स्वामीजी बड़े तपस्वी थे, उन्होंने भूख-प्यास, शीत-उष्ण आदि सब द्वन्द्व जीते हुए थे। एक दिन प्रातःकाल अत्यन्त शीतल पछवा हवा बड़ी तेज बह



क्या आपके शरीर को ठण्ड नहीं लगती ? (पृष्ठ-५२)

रही थी। स्वामीजी स्नान ध्यान से निवृत्त होकर कुटिया के बाहर पद्मासन में बैठे थे और दर्शन को आए हुए ठाकुर लोग स्वामीजी के प्रवचन सुन रहे थे। यद्यपि उन सम्पन्न लोगों ने रूई और ऊन के बहुत से वस्त्र पहन रखे थे। पर ठंड से उनके अंग ठिठुरे जा रहे थे। शरीर कांप रहा था। नाक और आँख से पानी बह रहा था। हाथ-पाँव सुन्न होते जा रहे थे। पर दयानन्दजी निश्चल भाव से उपदेश कार्य में लगे थे। सभी आश्चर्य चकित थे। ठाकुर गोपाल सिंह ने खड़े होकर हाथ जोड़कर पूछा, भगवन् इस भयंकर ठंड में हम सबके शरीर सिकुडे जा रहे हैं। पर आप पर इसका कोई असर नहीं दिखाई देता ? स्वामीजी मुस्कराकर बोले, "यह ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास के कारण है। उसने कहा, "हम कैसे जानें ?" उस समय स्वामी जी ने अपने हाथों के अंगूठे घुटने में रखकर ऐसे दबाए कि तत्काल ही उनके माथे पर ओसकण की तरह पसीने की बूँदें चमकने लगीं। शरीर पर रमाई हुई मिट्टी पसीने से भीग गई। ऐसी बहती हुई तेज ठंडी हवा के झोंकों में शरीर का इस प्रकार पसीना-पसीना हो जाना दर्शकों के लिए एक कल्पनातीत दृश्य था।

अभ्यास का चमत्कार

एक रात स्वामीजी गंगा के दूसरे किनारे पर आसन लगाए हुए समाधिस्थ थे। उसी समय बदायूँ के कलेक्टर अपने किसी यूरोपीय मित्रों के साथ शिकार के लिए गंगातीर पर आए। अचानक उनकी दृष्टि स्वामीजी पर जा पड़ी। वे मित्रों के साथ वहां आ पहुँचे। बड़ी देर तक वे संन्यासी के स्थान, रूप को समाधि निमग्नता को और तपस्या को देखते रहे। अन्त में जब स्वामीजी ने आँखें खोलीं, उनका सत्कार किया और चलते समय कलेक्टर विनयपूर्वक बोले, "बड़ा आश्चर्य है इतनी ठंड पड़ रही है, नदी का किनारा है, रात का समय है और आप बर्फ सी ठंडी रेत पर लंगोट मात्र लगाए मग्न बैठे हैं। क्या आपको ठंड नहीं लगती ? स्वामीजी उत्तर देने ही वाले थे कि कलेक्टर का मित्र बीच में बोल उठा, "हट्टा-कट्टा आदमी है। खाने को अच्छा माल मिलता होगा। इसे क्या ठंड लगेगी।" स्वामीजी हंसकर बोले, "हम दाल चपाती खाने वाले क्या माल खायेंगे ? बहुत अधिक हुआ तो दूध पी लिया।

परन्तु आप मांस, अंडे आदि पौष्टिक पदार्थ खाते हैं और मदिरा पान में भी आपको कोई अड़चन नहीं है, इसलिए यदि माल खाकर ठंड सही जाती हो तो कपड़े उतार कर आइए और थोड़ी देर मेरे साथ बैठ जाइए। "इसपर वह शर्मिन्दा हो गया और बात बदल कर बोला, "अच्छा तो बताइए आपको ठंड क्यों नहीं लगती ? उत्तर में स्वामीजी बोले, "इसका एक कारण तो अभ्यास है। देखिए आपका मुंह हमेशा नंगा रहता है और आपको उसे ढंकने की आवश्यकता अब भी नहीं प्रतीत होती। कलेक्टर महाशय ने अपने मित्रों को संकेत से बहुत बोलने से रोक दिया और वे चले गए।

लोहे की पिंडलियाँ

स्वामीजी इसी प्रकार राजपूतों को यज्ञोपवीत धारण कराते हुए सहस्रों मनुष्यों को उपदेश देते हुए फर्रूखाबाद तक गए और वहां से फिर चासी लौट आए। चासी में ओंकारदास नाम का एक व्यक्ति गंगा स्नान के लिए आया हुआ था। उसने भी स्वामीजी की कुटिया के निकट अपना डेरा डाल दिया। वह बड़ा व्यायाम करनेवाला था। इसीलिए बड़ा मजबूत सुगठित और बलवान था। शाम होने पर उसकी इच्छा हुई कि पांव दबाकर स्वामीजी की सेवा की जाए। इससे स्वामीजी के बल का भी पता चल जाएगा। जाकर के स्वामीजी से प्रार्थना की। स्वामीजी बोले, "हमारे पांव दबे-दबाए हैं, काहे को कष्ट करते हो।" परन्तु वह माना नहीं, और चरण सेवा में लग ही गया। ज्यों ही उसने पिंडलियों पर हाथ लगाया, उसे वे पिंडलियां लोहे की सी लगीं। हाथ ही नहीं धंसता था। सारा जोर लगाने पर भी मांस हाथों में नहीं आता था। ओंकारदास थोड़ी ही देर में ऊपर से नीचे तक पसीने से तरबतर होकर हांपता हुआ पांव-दबाना छोड़कर अलग हो गया। उसने स्वामीजी जैसा बलिष्ठ व्यक्ति अपने सारे जन्म में नहीं देखा था।

चपत का चमत्कार

एक जाट जिसका नाम छत्रसिंह था स्वामीजी का बड़ा प्रेमी था। परन्तु था पक्का नवीन मायावादी। एक दिन स्वामीजी के पास आया और अद्वैतवाद को लेकर बातचीत करने लगा। बातचीत के बीच जब छत्रसिंह ने कहा,

स्वामीजी आप चाहे कुछ भी कहिए, यह संसार है मिथ्या। स्वामीजी ने हाथ को थोड़ा सा आगे बढ़ाकर छत्रसिंह के मुंह पर एक चपत लगाई। चपत खाते ही वह चौंक पड़ा और मलता हुआ बोला, "महाराज सिद्धांत भेद होने पर भी आप जैसे ज्ञानी लोगों को आवेश में आकर थप्पड़ मार देना शोभा नहीं देता। स्वामीजी मुस्कराते हुए बोले, चौधरी जी ब्रह्म के सिवाय सब मिथ्या है। आप भी मिथ्या, मैं भी मिथ्या, मेरा थप्पड़ भी मिथ्या तो गाल काहे को मलते हो? आपको इस मिथ्या का अनुभव कैसे हो गया! यह सुनकर छत्रसिंह ने स्वामीजी के चरण पकड़ लिए और बोला, महाराज आपने आज मेरी आँखें खोल दीं।

रोटी–नाई की या गेहूँ की

चासी में स्वामीजी लगभग चार-पांच महीने रहे और उसके बाद वे अनूपशहर चले आए। अनूपशहर में उमेदा नाम का एक नाई रहता था। वह भी स्वामीजी का बड़ा भक्त बन गया था। एक दिन वह भक्ति भावना से थाल में भोजन परोसकर स्वामीजी की सेवा में लाया। ज्यों ही स्वामीजी खाने लगे वहां कोई बीस-पच्चीस ब्राह्मण बैठे हुए थे। वे कह उठे, स्वामीजी क्या करते हो, यह रोटी तो नाई की है। महाराज हंसते हुए बोले, "नहीं यह रोटी तो गेहूँ की है, मैं इसे अवश्य खाऊंगा।"

मूर्ति पूजा और पुराण विरोध

इस प्रकार उन्होंने छूआछूत का भी सक्रिय रूप से विरोध किया। स्वामी जी सामगान के बड़े अच्छे गायक थे। उनका कंठ स्वर भी बहुत सुन्दर था। स्वामीजी ने अनूपशहर में सामगान भी सुनाया। उसके बाद स्वामीजी गढ़िया आ गये। दैवयोग से वहीं कैलाश पर्वतजी आ निकले। सायंकाल के समय गंगातीर पर वह अपना नित्य कर्म कर रहे थे कि उनके सिर पर एक संन्यासी खड़ा दिखाई दिया। पूछा कौन है? उत्तर मिला, "मैं दयानन्द सरस्वती हूँ। सुनते ही उन्होंने स्वामीजी को अपने पास बिठा लिया और सब वृतान्त पूछने लगे। वृतान्त सुनाते हुए स्वामीजी बोले, कैलाश पर्वतजी मैं आपसे सहायता लेने आया हूँ। वे बोले, "कैसी सहायता!" स्वामीजी बोले, 'रामानुज बल्लभ

आदि सम्प्रदायों ने प्राचीन धर्म-कर्म नीति-रीति को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। इसलिए आप इनके खण्डन में मेरे सहायक बनिये। कैलाशजी बोले, आपका विचार उत्तम है, इन मतों का खण्डन अत्यावश्यक है। मैं आपको हर प्रकार की सहायता देने के लिए तैयार हूँ पर आप पहले मेरी दो बातें स्वीकार कर लीजिये। एक तो मूर्तिपूजा का खंडन छोड़ दीजिये। दूसरे आप पुराणों का खंडन भी छोड़ दीजिये। यह न कहिए कि ये व्यासकृत नहीं हैं और स्वार्थी लोगों के बनाये हुए हैं। स्वामीजी बोले "महात्मन् इन सम्प्रदायों का आधार, यही मूर्ति पूजा और पुराण हैं। जब तक इनका खंडन न होगा आर्ष ग्रंथों का आदर नहीं होगा। आप संन्यासी हैं। निर्भयता से लोगों में सत्य का प्रचार कीजिये। इसी वाद-प्रतिवाद में सारी रात बीत गई और सवेरा हो गया। स्वामीजी निराश होकर जाने के लिए प्रस्तुत हो गये और कैलाश पर्वतजी के बहुत आग्रह करने पर भी यह कहते हुए चल पड़े। मैंने सोचा था कि आप सत्य में मेरी सहायता करेंगे सो आपने नहीं की। ऐसी अवस्था में ईश्वर ही मेरी सहायता करेगा।

स्वामीजी वहाँ से चलकर अपने भक्तों के आग्रह से सोरों पधारें। गंगाजी के तीर पर गोसाईजी के मन्दिर में ठहरे और अगले दिन अंबागढ़ के स्थान में चले गए। सोरों में कुछ उपद्रवी लोगों ने आपस-मिलकर स्वामाजी को विष देकर मार डालने अथवा पानी में डुबा देने का षड्यन्त्र रचा। एक रात वे मिलकर आये। इस समय स्वामी जी के समीपवर्ती स्थान में एक और साधु सुख से सो रहा था। उन्होंने उसी को दयानन्द समझकर खटिया सहित उठा लिया और ले जाकर गंगाजी की धारा में फेंक दिया। जब उसने डूबते हुए चिल्लाकर बचाने की याचना की तब उनको पता चला कि यह तो दयानन्द नहीं है। वह साधु जल में से निकाल लिया गया।

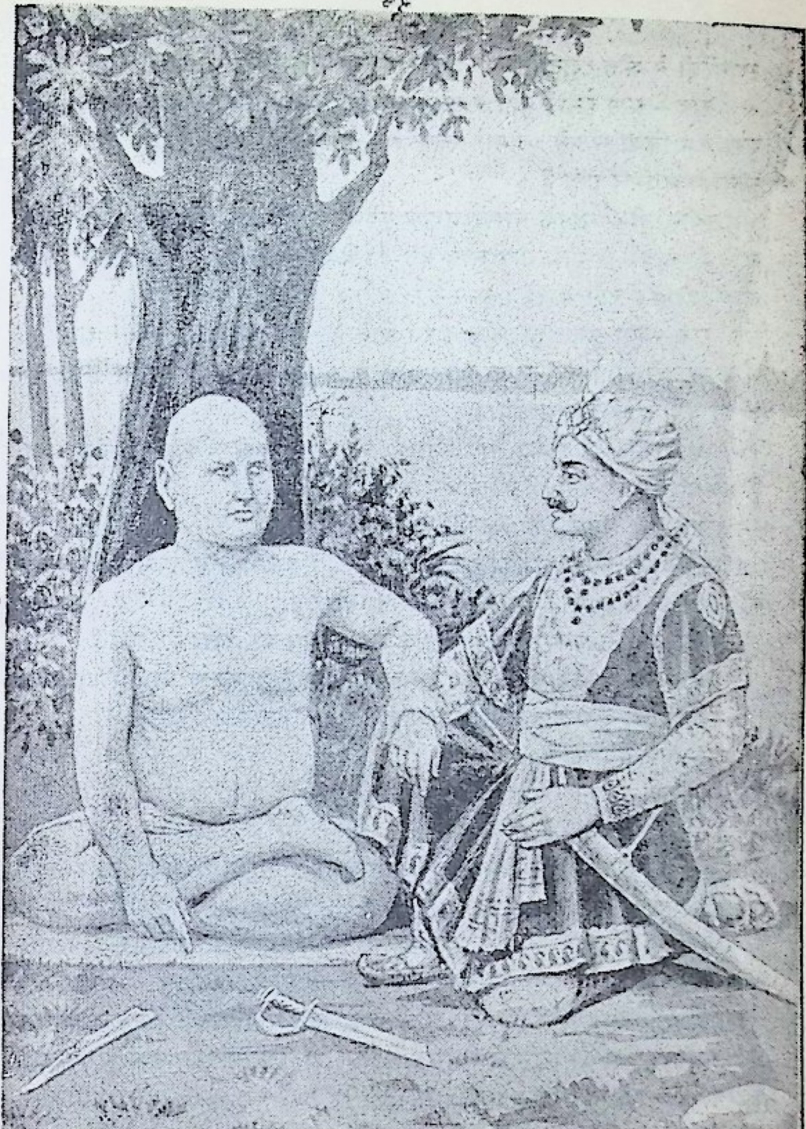
सहन शीलता

श्री स्वामीजी एक दिन उपदेश दे रहे थे और श्रोता दत्तचित्त होकर उनके उपदेश सुन रहे थे। उसी समय वहां एक हट्टा-कट्टा पहलवान आ पहुँचा। एक मोटा सोटा कन्धे पर रखे सभा को चीरते हुए सीधे स्वामीजी की ओर बढ़ गया। उसका चेहरा क्रोध के मारे तमतमा रहा था, आँखें लाल थीं।

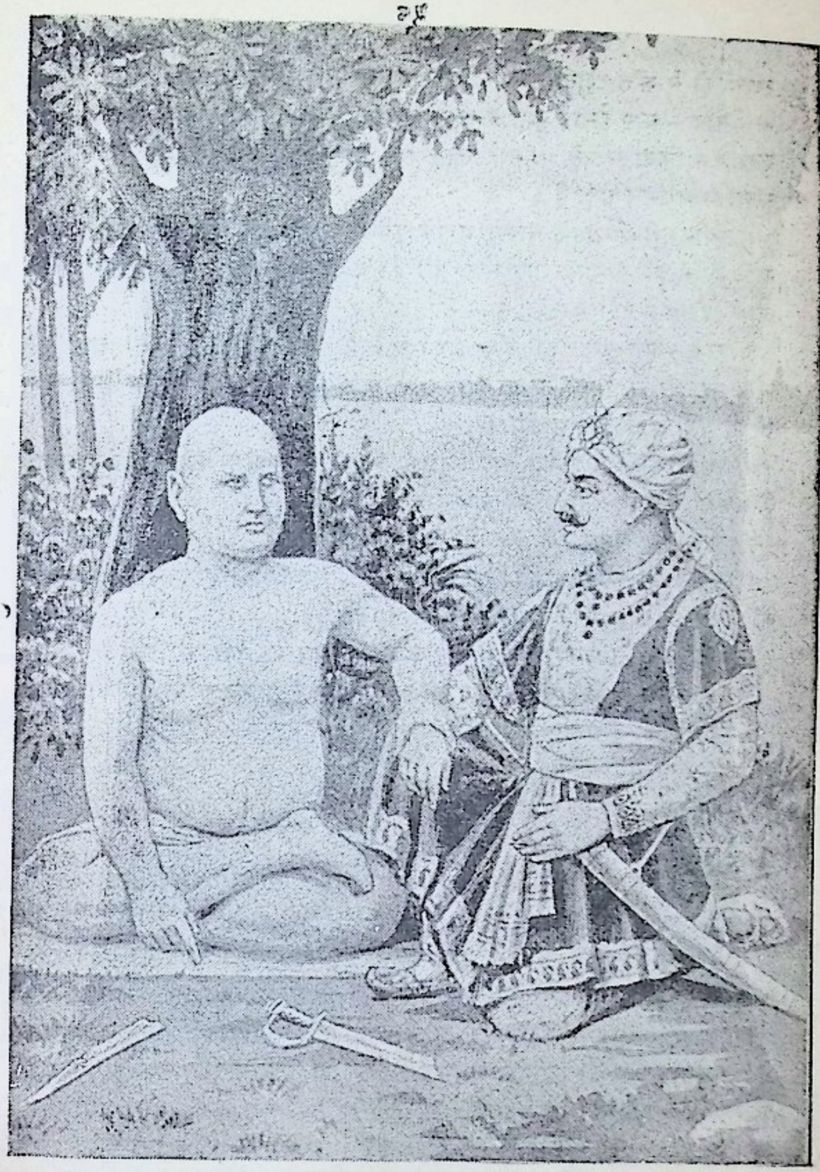
माथे पद त्योरियाँ चढ़ी थीं। होंट चबाता और दाँतों को पीसता हुआ बोला, अरे साधु तू ठाकुर पूजा का खण्डन करता है, गंगा-मैया की निंदा करता है, देवताओं के विरुद्ध बोलता है। झटपट बता, तेरे किस अंग पर यह सोटा मारकर तेरी समाप्ति कर दूं। यह सुनते ही सारी सभा सन्नाटे में आ गई परन्तु स्वामीजी प्रशांत भाव से मुस्कराते हुए बोले। भद्र, यदि तेरे विचार में मेरा धर्म प्रचार करना कोई अपराध है तो इसका प्रेरक मेरा मस्तिष्क है। यही मुझे खण्डन की बातें सुझाता है। इसलिए यदि तुम अपराधी को दण्ड देना चाहते हो तो मेरे सिर पर सोटा मारो। इन वाक्यों के साथ ही स्वामी जी ने जब उसकी ओर आँखें डालकर देखा, वह बलिष्ठ व्यक्ति ठडा पड़ गया। पैरों पर गिर पड़ा और स्वामीजी से बारबार रो-रोकर क्षमायाचना करने लगा। स्वामीजी ने उसे आश्वासन दिया और उसके अपराध को क्षमा कर दिया। इस दृश्य को देख लोग स्वामीजी की सहनशीलता की बड़ी प्रशंसा करने लगे और उनकी सब ओर धाक जम गई।

राव कर्णसिंह का क्रोध

वहाँ से स्वामीजी अनेक जगहों से होते हुए फिर कर्णवास में आये और वहीं अपनी कुटिया में ठहरे। उसी महीने में गंगा स्नान का मेला था। हजारों नर-नारी आये हुए थे। राव करणसिंह भी वहाँ स्नानार्थ आये हुए थे। उनकी वहां ससुराल थी। स्वामीजी की कुटिया से थोड़ी दूर पर वे उतरे हुए थे। रात को करणसिंह के निवास पर रास होने लगी। कुछ पंडित स्वामीजी को बुलाने आये। स्वामीजी बोले, 'हम ऐसे निन्दनीय काम में कभी सम्मिलित नहीं हो सकते तुम लोग जो अपने पूर्वजों के स्वांग बनाकर देखते हो यह बहुत ही लज्जास्पद और दुःख की बात है। दूसरे दिन पंडितों ने राव करणसिंह के पास जाकर यह बात सुनाई और उन्हें भड़का दिया। वह भी उत्तेजित होकर पंडितों और नौकरों के साथ स्वामीजी की कुटिया पर आ पहुँचे। उस समय श्रोता एकाग्रचित होकर उपदेश सुन रहे थे। स्वामीजी महाराज ने सेना सहित रावजी को आये हुए देखकर उनका सत्कार किया। लेकिन राव अपनी गर्दन ऐंठे हुए बोले, 'कहाँ बैठें, स्वामीजी जान गये कि अहंकार बोल रहा है। उत्तर दिया जहाँ इच्छा हो बैठ जाइये। राव बोले जहाँ तुम बैठे हो वहीं बैठेंगे।



राव कर्णसिंह के बल का भारी अभिमान तलवार के टुकड़े कर ऋषि ने भंग कर दिया।



राव कर्णसिंह के बल का भारी अभिमान तलवार के टुकड़े कर
ऋषि ने भंग कर दिया

स्वामीजी ने शीतलपाटी हटा ली और बोले, आइये यहीं बैठिये।

राव—आप हमारे यहाँ रास में क्यों नहीं आये ? संन्यासी होकर ऐसा बुरा कर्म किया आपने। हमारे स्थान पर जब रासलीला होती है तो पंडित संन्यासी शामिल होते हैं।

स्वामीजी—आपके सामने आपके पूर्वजों के रूप बनाकर दुश्चरित्र मनुष्यों आते हैं, नाचते हैं और आप लोग बैठे-बैठे देखा करते हैं। उस समय आप लोगों को शर्म नहीं आती। आप कैसे क्षत्रिय हैं ?

राव—हम तुमसे बातचीत करने आये हैं। हमने सुना है कि तुम अवतारों और गंगाजी की निन्दा किया करते हो। याद रखो यदि मेरे सामने निंदा की तो मैं बुरी तरह पेश आऊँगा।

स्वामीजी—मैं निन्दा नहीं करता। मैं जो चीज जैसी है वैसी ही कहता हूँ। गंगा का भी वैसे ही वर्णन करता हूँ।

राव—तो फिर गंगा कितनी है ?

स्वामीजी अपना कमण्डल उठाकर बोले, मेरे लिए तो इतना ही पानी काफी है इसलिए मेरे लिए गंगाजी इतनी ही हैं।

स्वामीजी ने राव से पूछा, आपके मस्तक पर यह रेखा सी क्या है ?

राव—यह श्री है। जो इस श्री को धारण नहीं करता वह चाण्डाल है।

स्वामीजी—आप कब से वैष्णव हुए हैं ?

—कुछ वर्षों से।

—क्या आप के पिताजी वैष्णव थे ?

—नहीं वे नहीं थे।

—तब तो आप ही के कथनानुसार आपके पिता और कुछ साल पहले आप भी चाण्डाल सिद्ध हो गए।

—इस बात पर राव को क्रोध आ गया। और वे तलवार पर हाथ रखकर बोले, मुंह संभाल कर बोलो। स्वामीजी के साथ टीकाराम बैठे हुए थे। राव को क्रोधित और उनके साथी दस-बारह आदमियों को शस्त्र सन्नद्ध देखकर वे भयभीत हो गए। पर स्वामीजी टीकाराम से बोले; डरते क्यों हो। कोई चिन्ता की बात नहीं। हमने जो कुछ कहा है, सत्य कहा है। जैसे किसी नाग को छेड़ दिया हो, राव क्रोध में तड़पने लगे। आँखों में खून उतर आया और

दुष्ट वचन कहने लगे। पर स्वामीजी हँसते हुए बोले, 'राव, यदि शास्त्रार्थ ही करना हो तो वृन्दावन से रंगाचार्यजी को बुला भेजिये। उसमें जो भी हार जाये वह दूसरे के सिद्धान्त को स्वीकार कर ले। यह प्रतिज्ञा हो जानी चाहिए।

राव—तू क्या रंगाचार्य से वाद-विवाद करेगा। तेरे जैसे तो उनकी जूतियां झाड़ते हैं। ऐसा कहते-कहते बारबार राव अपना दायां हाथ तलवार पर ले जाते। यह देख स्वामीजी हँसते हुए बोले, रावजी क्या बारबार तलवार का भय दिखलाते हो। शास्त्रार्थ करना हो तो अपने गुरुजी को यहाँ ले आइये हम तैयार हैं और यदि शस्त्रार्थ ही करना हो तो संन्यासियों से क्यों टकराते हो। जयपुर, जोधपुर से जा भिड़ो। फिर क्या था राव आपे से बाहर हो गये। आँखों से चिंगारियाँ फूटने लगीं और तलवार लेकर खरी-खोटी सुनाते हुए वे स्वामीजी की ओर लपके। स्वामीजी ने उन्हें हाथ से ढकेल दिया। राव लुढ़क गये। फिर संभल कर चौगुने क्रोध से महाराज पर तलवार का वार करने के लिए आगे बढ़े। वे तलवार चलाना ही चाहते थे कि स्वामीजी ने झपट कर उसे उनके हाथ से छीन लिया और जमीन पर दबा कर दो टुकड़े कर दिए और बोले, मैं संन्यासी हूँ, तुम्हारे किसी अत्याचार से चिढ़कर तुम्हारा अनिष्ट चिन्तन नहीं करूँगा। जाओ ईश्वर तुम्हें सम्मति प्रदान करे।

राव विदा हो गये और स्वामीजी के साहस और निर्भीकता का प्रभाव सोरों के लोगों पर पड़ा।

व्याकरण सूर्य अस्त

जिन दिनों स्वामीजी शाहबाजपुर में थे कासगंज वासियों ने सुना कि स्वामीजी के पूज्य गुरू श्री विरजानन्दजी का स्वर्गवास हो गया है। उन्होंने स्वामीजी का पता लगाकर उनको इस बात की सूचना दी। यह दुःखद समाचार सुनते ही स्वामीजी एक दम सन्न रह गए और फिर बोले आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया। जिस महापुरुष के मुंह पर अपने सगे-सम्बन्धियों की मृत्यु या घर-बार को त्यागने के समय भी व्याकुलता के कोई चिन्ह नहीं दिखाई दिये। अपने गुरु की मृत्यु पर वही इतने दुखी हुए, यह वास्तव में स्वामीजी के अपने आचार्य के प्रति प्रेम को प्रकाशित करता है।

कोपीनधारी दयानन्द

गंगातीर पर विचरते हुए स्वामीजी का जीवन एक उग्र तपस्वी का जीवन था। शरीर पर सिवा लंगोट के कुछ नहीं होता था। इसी दशा में उन्होंने गंगा की रेती में पौष और माघ की ठंडी रातें काटीं, वैसाख और जेठ की कड़ी धूप और लूएं सहन कीं। सावन भादों की झड़ियाँ झेली। वे एकांत स्थान में जाकर स्नान किया करते। कौपीन धोकर सूखने डाल देते और स्वयं सिद्धासन लगाकर बालू पर बैठ जाते। जब कौपीन सूख जाती तो फिर उसे बांधकर मनुष्यों के आने-जाने के स्थान पर आते। स्वामीजी का रात का समय प्रायः तुरिया अवस्था में बीतता। कई परीक्षक लोग आधी रात तीसरे पहर इन्हें देखने गए। परन्तु स्वामीजी को ध्यानावस्थित पाया। वे प्रायः मांगने नहीं जाते थे। इसलिए रूखा-सूखा जैसा भी अन्न कोई पहले लाकर दे देता उसे ही स्वीकार कर लेते थे। स्वामीजी महाराज अपने आने का समाचार किसी को नहीं देते थे और प्रायः अचानक ही आ पहुँचते थे। स्थान स्थान पर उनके शिष्य थे और अति प्रेमी शिष्य थे परन्तु स्वामीजी प्रस्थान के समय भी चुपचाप चले जाते थे कि किसी को पता तक नहीं लगता था।

लम्बी दाढ़ी के क्या लाभ ?

फर्रुखाबाद की एक घटना है कि एक दिन तीसरे पहर चार-पांच मुसलमान स्वामीजी के पास आकर पूछने लगे कि आपके विचार में परमेश्वर ने मुहम्मद को हमारे लिए भेजा है या नहीं ? स्वामीजी उत्तर देते समय बोले, कि हमारे कथन से आप नाराज न होइएगा। हम तो मुहम्मद को अच्छा नहीं समझते। आप लोगो ने भी अच्छा नहीं किया जो उसके अनुयायी बन गए। जब चोटी के बाल कटवा डाले थे तो इतनी लम्बी दाढ़ी रखने से क्या लाभ ?

दयालु दयानन्द

एक दिन ऐसा हुआ कि हजारों व्यक्ति स्वामी जी का उपदेश सुन रहे थे। उस समय एक पंडित ने खड़े होकर मूर्ति पूजा पर प्रश्न करना आरम्भ कर दिया। स्वामी जी भी सन्तोषजनक उत्तर दे रहे थे। बीच में ही काली के उपासक, शराब में मस्त एक ब्राह्मण ने उठकर दुर्वचन कहते हुए स्वामी-

जी पर जूता फेंका, जूता स्वामी जी तक न पहुंचकर बीच में ही गिर पड़ा। परन्तु इससे वहां बैठे लोगों की आँखों में खून उतर आया। उन्होंने उसे पकड़ लिया, लगे पीटने। स्वामी जी ने जब उसे पिटते देखा उन्हें उस पर बड़ी दया आई और बोले, हमें इसकी बात से कोई दुख नहीं हुआ और यदि जूता लग भी जाता तो भी कौन सा रामबाण था। इसने जो कुछ किया है अज्ञान और शराब के वश में किया है। इस पर दया करो और छोड़ दो। स्वामी जी के कहने से उसे छोड़ दिया गया।

शिवालय के स्थान पर पाठशाला

फर्रुखाबाद में स्वामी जी पाठशाला की स्थापना करने का प्रयत्न कर रहे थे। वहाँ के लाला बंसीलालजी एक प्रतिष्ठित पुरुष थे। उन्होंने एक शिवालय बनवाया। उसमें शिव की मूर्ति स्थापित करने को ही थे कि स्वामी जी का उपदेश सुनकर उनका निश्चय बदल गया। मूर्तिपूजा उन्हें वेद विरुद्ध दिखाई देने लगी और उन्होंने स्वामीजी से प्रार्थना करके शिवालय के स्थान पर पाठशाला स्थापित कर दी।

कानपुर में शास्त्रार्थ

जगह-जगह घूमते हुए वर्षा ऋतु के आरम्भ में स्वामी जी कानपुर आये। यहां उन्होंने विज्ञापन छपवाकर कई गप्पों का खण्डन किया। कानपुर में दो बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। प्रयाग नारायण और गुरुप्रसाद। इन दोनों ने कैलाश और बैकुंठ नाम के दो मन्दिर बनवाये थे। जब वे दोनों स्वामी जी से मिले तो स्वामी जी ने उन्हें आदेश दिया। आपने लाखों रुपये लगाकर मन्दिर खड़े किये हैं। परन्तु यह तो बताइये कि इससे लाभ क्या होता है? अनाधिकारियों को खिला-पिलाकर ईंट-पत्थरों में व्यय करके इतना रुपया बर्बाद करने की बजाय बालक-बालिकाओं की पाठशाला खोल देते, देश में शिल्प-शालाएं स्थापित करते और समाज हित का काम करते तो कितना अच्छा होता। इस उपदेश से वे दोनों बहुत गुस्से हुए और उन्होंने शास्त्रार्थ के लिए लक्ष्मण शास्त्री और हलधर ओझा को तैयार कर लिया। काफी दिन शास्त्रार्थ चला लेकिन बीच में ही प्रतिनिधियों ने गड़बड़ करके बाहर जाकर अपने आपको

विजयी घोषित कर दिया और बाद में सहायक कलेक्टर मि० थेन जो कि संस्कृत भाषा के ज्ञाता थे और जिन्हें सर्व-सम्मति से उस शास्त्रार्थ का मध्यस्थ नियत किया गया था। उसके हस्ताक्षर से एक व्यवस्था लिखवाई गई जिस में मि० थेन ने लिखा कि मेरी सम्मति में शास्त्रार्थ के समय स्वामीजी दयानन्द सरस्वती संन्यासी की विजय हुई। उनकी युक्तियां वेदानुकूल थीं और इस व्यवस्था को समाचारपत्रों में छपवाकर प्रचारित किया। इससे स्वामीजी की सत्यता का सिक्का बैठ गया और कानपुर के लोग बड़े प्रभावित हुए।

कुकर्मी का भोजन नहीं खाना

एक दिन साहू श्यामसुन्दर ने, जो मुरादाबाद के रईस थे, परन्तु वेश्यागमनादि दुर्व्यसनों में ग्रस्त थे, स्वामीजी से प्रार्थना की कि महाराज आप मेरे घर पर चलकर भोजन कीजिये। स्वामीजी ने इस प्रार्थना को अस्वीकार किया। परन्तु उसी समय जब एक दूसरे सज्जन ने यही प्रार्थना की तो उसे स्वीकार कर लिया। साहू श्यामसुन्दर ने स्वामी जी को उपालम्भ दिया तो उस समय तो महाराज चुप रहे, किन्तु व्याख्यान में इस घटना का जिक्र करके और साहू साहब को सम्बोधन करके कहा कि जब तक तू कुकर्म न छोड़ेगा, हम तेरे घर पर जाकर भोजन न करेंगे।

रामलीला का विरोध

आश्विन वदी १ सं० १९२६ को श्री स्वामी जी रामनगर पहूँचे। पहली रात को, राजवाटिका के समीप, मिट्टी के एक ढेले को सिर के नीचे रख रेती ही में सो रहे, सवेरे नित्य कर्मों से निवृत्त हो जब एक स्थान पर विराजमान हुए तो दर्शकों का आना जाना आरम्भ हो गया। गंगा के तट पर राजा की हस्तिशाला थी। स्वामी जी उसी के एक स्थान में टिक गए। मूर्ति-पूजन का खण्डन रात-दिन होता रहता था। साथ ही लोगों को संन्ध्या आदि कर्म करने की प्रेरणा भी होती रही।

महाराज ईश्वरीनारायण सिंह जी को भी पता लग गया कि अतुल प्रतिभा का धनी संन्यासी यहाँ ठहरा हुआ है और प्रतिमा-पूजन आदि को वेदविरुद्ध बताता है। उन्होंने स्वामी जी के भोजन का पूर्ण प्रबन्ध करने की

आज्ञा कर दी और स्वामी जी को लिवा लाने के लिए एक चौबे को भेजा। महाराज ने कहा कि मुझे महाराज के समीप जाने की कोई आवश्यकता नहीं, परन्तु यदि उन्हें कुछ पूछना है तो वे, जब चाहें आ सकते हैं।

महाराजा ने स्वामी जी को राम-लीला देखने के लिए भी आहूत किया। परन्तु स्वामी जी वहाँ नहीं गये और बोले कि ऐसी लीलायें देखना संन्यासियों का काम नहीं।

काशी में

रामनगर में निवास करके स्वामी जी ने काशी के पण्डितों के विद्या-बल का, शास्त्र-सामर्थ्य और गति-मति का पूर्ण परिमाण जान लिया। उनकी कोटियों के दुर्गों के भेदों को समझ लिया। पौराणिक महादुर्ग के दो धुरंधर विद्वान् वीर—पण्डित ज्योति:स्वरूप और जवाहरदास जी—अपने पोषक बना लिए, और फिर एक अस्त्र-शस्त्र सम्पन्न सेनापति की भाँति, शास्त्रसंनद्ध होकर काशी जाने के लिए उद्यत हो गए। रामनगर से जब स्वामी जी चलने लगे तो महाराज ईश्वरीनारायणसिंह जी ने उन्हें कहला भेजा कि यहाँ से हमारी नौका में बैठकर जाइए और काशी जी में जाकर हमारे ही उद्यान में निवास कीजिएगा। परन्तु महाराज उनकी दोनों बातों को अस्वीकार कर यहाँ से चल पड़े।

स्वामी दयानन्द जी का काशी में आने का यह प्रयोजन था कि यहाँ के पण्डित समूह में उत्तेजना उत्पन्न करके उनमें आन्दोलन का भाव उत्पन्न करें। उन्हें जागृत अवस्था में लायें। जिससे काशी-वासी पण्डितगण अपने महत्त्व को, अपने सामर्थ्य को, अपने कर्त्तव्य-कर्म को और निरन्तर चले आने वाले अपने विमल यश को जान जायँ; अपने चित्त-दर्पण पर से पौराणिक परदे को उठाकर वैदिक धर्म के सच्चे स्वरूप का दर्शन कर सकें, आर्य जाति की वास्तविक दशा को अच्छी तरह देख सकें।

कार्तिक वदी २ सं० १९२६ को श्री स्वामी जी ने काशी नगर में राजा माधोसिंह के आनंदोद्यान में आसन किया। उनके शुभागमन का समाचार सारी काशी नगरी में तुरन्त फैल गया। पण्डित श्री जवाहरदास जी और ज्योति:स्वरूप जी को ज्योंही समाचार प्राप्त हुआ वे तत्काल महाराज के

स्थान पर मिलने आए। अन्य पण्डित लोग भी मण्डलियाँ बना कर आने और प्रश्न पूछकर अपने भ्रम निवारण कराने लगे। महाराज के समीप दिन भर विद्यार्थियों की, पण्डितों की, वाद-विवाद प्रिय विद्वानों और जिज्ञासु जनों की भारी भीड़ लगी रहती थी। लोग चिढ़ाने और खिजाने की भी चेष्टा करते थे। वे अकेले अपने अलौकिक साहस से आठ-आठ घण्टे तक लगातार वादी-दिग्गजों के साथ जूझते रहते थे, श्रोताओं को उपदेश देते चले जाते थे।

शास्त्रार्थ का आह्वान : दुष्टों के लिए हुङ्कारनाद

महाराज ने काशी-नरेश को कहला भेजा, 'आपका कर्त्तव्य है कि मूर्ति-पूजा आदि विषयों पर शास्त्रार्थ कराकर सत्यासत्य का निर्णय कराएँ।" इधर महाराजा स्वयं भी अखण्ड पुराण-खण्डन से घबरा उठे थे। इसलिए उन्होंने पण्डितों को बुलाकर शास्त्र-समर के लिए सुसज्जित होने की प्रेरणा की। पण्डितों ने महाराज से निवेदन किया कि स्वामी दयानन्द वेदों के प्रमाण पूछा करता है, इसलिए वेदों के प्रमाण आदि एकत्रित करने के लिए पन्द्रह दिन का अवकाश मिलना चाहिए। पण्डितों को मुंह-मांगा अवकाश मिल गया और वे शास्त्रार्थ में सफलता लाभ करने के ढंग सोचने लगे। स्वामी जी का विद्या-बल जांचने के लिए विद्यार्थी और पण्डित भी आते थे और अनेक प्रकार से प्रश्न करते करते अन्त में हार जाते थे; परन्तु वे उस अथाह ज्ञान-गंगा की थाह नहीं पा सकते थे। कहते हैं कि एक दिन, राजाराम शास्त्री भी गेरुएवस्त्र-धारण करके स्वामी जी के पाण्डित्य की परीक्षा लेने आए; परन्तु आगे वह पानी न था, जिसकी पेंदी तक वे पहुँच सकते।

पण्डित-मण्डिली ने कुछ बातें जानने के लिए शालिग्राम राजशास्त्री आदि चार पण्डितों को स्वामी जी के निकट भेजा। उन्होंने आकर नमस्कार आदि के अनन्तर कुछ प्रश्न किए, परन्तु उस समय उनको उत्तर देना उचित न समझा गया अत: वे लौट गए। नगर के कोतवाल महाशय स्वामीजी का बड़ा आदर करते थे। उनके आग्रह करने पर स्वामी जी ने पण्डितों को उत्तर देना मान लिया।

उन शास्त्रियों ने फिर आकर पूछा कि आप कितने ग्रंथ प्रामणिक मानते हैं? स्वामीजी ने उत्तर में चार वेद, चार उपवेद, छः वेदांग, छः उपांग, और

मनुस्मृति ये २१ ग्रंथ लिख दिये। उन्होंने फिर पूछा कि यही ग्रन्थ प्रामाणिक हैं इसमें क्या प्रमाण है ? मनुस्मृति में कितने श्लोक मानते हो ?

स्वामीजी ने कहा कि इन प्रश्नों का उत्तर शास्त्रार्थ के समय दिया जायगा। तत्पश्चात् पण्डित लोग वहाँ से चले गए।

महाराजा ईश्वरीनारायणसिंह ने पण्डितों की दान-दक्षिणा का सारा बोझा अपने ऊपर ले लिया और शास्त्रार्थ की तिथि कार्तिक सुदी द्वादशी संवत् १९२६ नियत कर दी। इसकी सूचना कलेक्टर महाशय को भी दी गई। इस पर उन्होंने कहा कि शास्त्रार्थ यदि आदित्यवार को होता तो हम भी सम्मिलित हो सकते थे। परन्तु वहाँ तो सोच समझकर, इसीलिए मंगलवार नियत हुआ कि राजकर्मचारियों की उपस्थिति में गोलमाल करना कठिन हो जायेगा। शास्त्रार्थ किस स्थान पर हो इसका निश्चय करने के लिए कोतवाल रघुनाथसहाय स्वामी जी के समीप आए। पूछने पर उन्होंने उनसे कहा कि विवश करके हमें कोई चाहे कहीं ले जाय परन्तु मैं संन्यासी हूँ, अपनी इच्छा से किसी के स्थान पर जाकर उत्तर-प्रत्युत्तर नहीं करूंगा। मैं शास्त्रार्थ के लिए किसी के भी स्थान पर नहीं जाया करता। यहाँ जिनका जी चाहे मेरे ही आसन के पास आकर प्रश्न पूछें।

स्वामी जी का उत्तर सुन कर काशीराज ने भी आनन्द-उद्यान में अपने दल-बल सहित जाना स्वीकार कर लिया।

स्वामी दयानन्द के साथ, काशी के सारे पण्डितों का शास्त्रार्थ होगा, इस समाचार की सारे नगर में धूम मच गई। घाटों पर, अन्न शालाओं में, पाठशालाओं में, मन्दिरों में, गृहस्थों के घरों में, गली-कूचे में, बाजार और कचहरी में जहाँ जाओ इसी नूतन विषय पर बात होती सुनाई देती थी। महात्मा जवाहरदास जी ने स्वामी जी को कहा—"काशी में तो अनेक पण्डित हैं, आप किसे-किसे जीतेंगे ? सबको कैसे परास्त करेंगे ?" उन्होंने उत्तर दिया, "काशी के सकल विद्वन्मण्डल में दक्षिणी बालशास्त्री ही ऐसा है, जो कुछ काल तक हमारे साथ वार्तालाप कर सकेगा। शेष तो सब काक-भाषा में—नवीन न्यायादि में—ही निपुण हैं। वेदार्थ में उनकी गति नहीं है।"

कार्तिक सुदी द्वादशी, मंगलवार के दिन, प्रातःकाल ही से सारे काशी नगर में एक विचित्र हलचल मच गई। काशी नरेश के यहाँ से पालकियाँ,

चँवर, छत्र इत्यादि पण्डितों के निवास-स्थानों पर पहुँचाए जा रहे थे। विश्वनाथ और दुर्गा आदि के मन्दिरों में विजय के लिए प्रार्थनाएँ हो रही थीं। पण्डित लोग परस्पर मिलकर स्वामी जी को जीतने के लिए न्याय की पक्तियाँ, व्याकरण की फक्किकाएँ, वेदान्त की कोटियाँ, चातुर्य की अनेक चालें और प्रवचना की चोटें चलाने के ढंग सोच रहे थे; श्रुति, स्मृति आदि के प्रमाण एकत्रित करने में लगे थे।

काशीधाम में जहाँ प्रवर पण्डित निवास करते हैं वहाँ परले सिरे के दुर्दण्ड उपद्रवियों की कुछ न्यूनता नहीं। उस समय ऐसे लोग भी स्वामी-चरणों को पीड़ा देने के लिए, अपने षड्यन्त्र का ताना-बाना तन रहे थे।

पूर्वोक्त दृश्य को देख कर भक्त बलदेव का हृदय थरथरा उठा। उसने अति शीघ्रता स स्वामी जी के निकट पहुँचकर निवेदन किया—'महाराज! आज आपके स्थान पर सहस्रों मनुष्यों का जमघटा लगेगा। उसमें केवल हुल्लड़ मचाने के लिए भी कुछ उद्दण्ड जन आएंगे। महाराज ने मुस्कराकर कहा—"बलदेव! कुछ भी चिन्ता न कीजिए। योगीजनों का यह दृढ़ विश्वास है कि अविद्या की तमोराशि को सत्य का सूर्य, अकेला ही तुरन्त जीत लेता है। बलदेव! जो मनुष्य पक्षपात का परित्याग करके केवल लोकहित के लिए, ईश्वर की आज्ञानुसार सत्योपदेश करता है उसे भय कहाँ है? चिन्ता किस बात की है? एक मैं—आत्मा—हूँ, एक परमात्मा है और एक ही धर्म्म है। दूसरा है कौन, जिससे डरें और काँपें? उन सबको आ जाने दो जो कुछ होगा उसी समय देख लिया जाएगा।"

महाराज ने इस प्रकार बलदेव को धैर्य्य प्रदान किया। फिर क्षौर कराकर स्नान किया। तत्पश्चात्, वे भोजन पाकर चटाई पर बैठ गए।

उधर पण्डितों को सवेरे से सुसज्जित होते दिन का तीसरा पहर आ गया। उस दिन पाठशालाओं में अनध्याय किया गया था। इसलिए नए और पुराने सभी विद्यार्थी, लम्बी-लम्बी पंक्तियाँ बाँध कर अपने-अपने गुरुओं के निवास स्थानों के आगे उपस्थित हो गए और जयध्वनि से ऊँची अट्टालिकाओं को प्रतिध्वनित करने लगे। नियत समय पर, शकुन मना और मंगलोपचार कर सभी पण्डितगण अपनी-अपनी पालकियों में आरूढ़ हो गए। उनके सिरों पर छत्र और चँवर झूलने लगे। गुरुजन की आज्ञा से विद्यार्थीगण, जय-नाद से

मन्दिर-मालाओं को और बाजार के दोनों ओर की दुकानों को निनादित करते पालकियों के आगे-आगे चलने लगे। पण्डितों की चढ़ाई को देखकर सारा नगर चलायमान हो गया। नाना भाँति के साम्प्रदायिक चिह्नों से सुसज्जित साधु-संन्यासी भी टोलियाँ बनाकर उसी ओर चलने लगे। ऐसा प्रतीत होता था कि सब सम्प्रदायों की समुच्चित शक्ति अकेले दयानन्द पर चढ़ आई है। सारा पौराणिक बल, एकाकी परमहंस पर एक बार ही टूट पड़ा है।

काशी-नरेश सहित सैकड़ों विद्वान् अद्वितीय दयानन्द से शास्त्रार्थ करने पर उतारू हुए। उस पण्डित-सैन्य के प्रसिद्ध महारथी, स्वामी विशुद्धानन्द जी, बालशास्त्री, शिवसहाय, माधवाचार्य, वामनाचार्य्य, ताराचरण, जयनारायण तर्कवाचस्पति, राधामोहन तर्कवागीश और अम्बिकादत्त जी आदि सत्ताईस-अठाईस विद्वान् थे। ये लोग अपनी-अपनी सेना-पंक्ति का संचालन करते बढ़ते चले आ रहे थे। परन्तु कोतवाल महाशय इन सब के पहिले ही श्री स्वामी जी के पास पहुँच गए। उन्होंने एक कोठरी से द्वार के निकट आसन बिछाकर उस पर स्वामी जी को बैठा दिया और उनके सामने एक आसन प्रतिपक्षी पण्डितों के लिए लगा दिया। काशी-नरेश के लिए भी एक अलग आसन स्थापित किया गया। कोतवाल महाशय का, इस प्रकार केवल तीन ही आसन लगाने का तात्पर्य यह था कि स्वामी जी के समीप एक समय में केवल एक ही पण्डित बैठे, जिससे कोई कोलाहल न होने पाए।

कोतवाल अभी आसन-व्यवस्था कर ही चुके थे कि इतने में उमड़ा हुआ पण्डित-पूर आ पहुँचा, और लगा सारे स्थान को प्लावित करने। उन्होंने आते ही भीतर आने के सभी मार्ग रोक लिए। वे स्वामी जी के सहायक पण्डित जवाहरदास जी तथा पण्डित ज्योतिःस्वरूप जी आदि को भी नहीं आने देते थे। स्वामी जी को एक भक्त ने पत्र लिख कर सूचित किया हमें जान-बूझकर भीतर आने से रोका जाता है। स्वामी जी ने तब कोतवाल को कहकर अपने सहायक परमहंसों को भीतर बुला लिया और पण्डित जवाहरदास जी तथा पण्डित ज्योतिःस्वरूप जी को अपने निकट बैठाया।

पण्डित ज्योतिःस्वरूप जी एक प्रतिष्ठित और धुरन्धर विद्वान् थे। उनकी विद्या का लोहा सारे पण्डित मानते थे। उन्होंने स्वामी जी के समीप बैठते समय यह कह भी दिया, "पण्डित लोग पहले हम से तो शास्त्रार्थ कर लें।

यदि फिर भी उनमें कुछ शक्ति शेष रह जाय तो पीछे से भले ही स्वामी जी से प्रश्नोत्तर करने को समुद्यत हों।"

ज्योतिःस्वरूप जी काशीवासी पण्डितों की नस-नस और नाड़ी-नाड़ी को जानते थे। वे यह भी जानते थे कि कौन कितने पानी में है। इसलिए, उन्हें स्वामी जी के निकट बैठा देखकर पण्डितों का माथा ठनक गया। उनको अपने भेदों और चालों के प्रकट हो जाने का खटका हो गया। वे यह सोच ही रहे थे कि ज्योतिःस्वरूप जी के पंजे से कैसे छूटें कि उसी समय, महाराज ईश्वरीनारायणसिंह आ पहुँचे। महाराजा को आते देख सारे पण्डितों ने उठकर उनको आशीर्वाद दिया और वे उनके साथ ही आगे बढ़ आए, यहाँ तक कि उन्होंने स्वामी जी को घेर लिया।

यदि वे लोग इस पहिले नियम को तोड़ने पर ही सन्तोष करते तो भी कोई बात न थी, परन्तु उनकी आँखों में तो ज्योतिःस्वरूप जी का वहाँ बैठना काँटे की भाँति रड़क रहा था। उन्होंने आशीर्वाद देते समय महाराजा से कह दिया—"एक तो दयानन्द स्वयं सिंह के सदृश हैं, उसका परास्त करना दुष्कर है, दूसरे व्याघ्र समान ज्योतिःस्वरूप उसके साथ बैठ गया है। उसकी उपस्थिति में तो किसी भी चाल से जय-लाभ करना सम्भव नहीं।

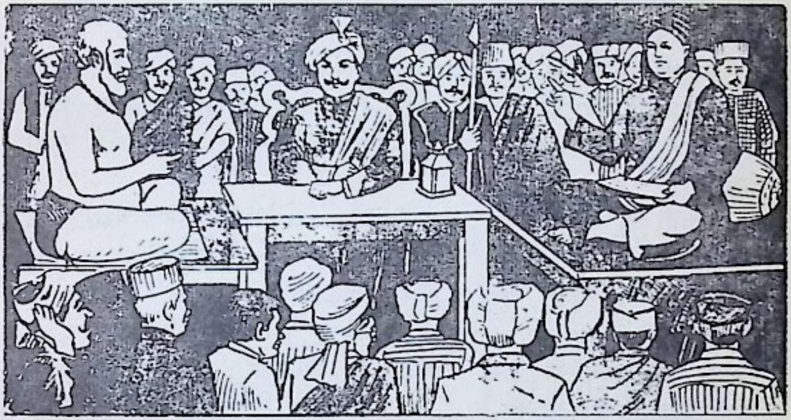
महाराज ने मर्म को समझा लिया और बैठते ही श्री जवाहरदास तथा श्री ज्योतिःस्वरूप जी को कहा कि यह स्थान पण्डितों के लिए नियत है। आप इससे कुछ पीछे हट कर बैठें। इतने से भी प्रतिपक्षियों की सन्तुष्टि नहीं हुई। उनके संकेत से महाराजा ने ज्योतिःस्वरूप जी को पकड़वा कर वहाँ से बाहर कर दिया।

स्वामी जी ने अपने सहायकों को अपमानित होते देखकर इस अन्याय का विरोध किया और उनकी इस धींगा-धींगी पर घृणा प्रकट की। परन्तु, वे तो सभी एक ही रंग में रंगे हुए थे। इसलिए फल कुछ भी न निकला। कोतवाल ने भी उपालम्भ रूप से कहा कि हमारा किया नियम तोड़ दिया गया है, और इतने पण्डित अकेले स्वामी जी को घेर कर बैठ गए हैं, यह सब अनुचित है। परन्तु उस समय तो उचितानुचित की चर्चा कोई भी न सुनता था।

श्री स्वामी जी ने महाराजा को कहा कि अपने सरस्वती-भण्डार से पुस्तकें मंगा लीजिए। महाराजा के भाई ने कहा कि पुस्तकें क्या करनी हैं? यों ही

शास्त्रार्थ होगा। स्वामी जी ने फिर कहा कि क्या वेद मंगा लिए हैं ? इस पर महाराजा ने कहा कि वेद की पुस्तकों की कोई आवश्यकता नहीं, वे तो हमारे पण्डितों के कण्ठाग्र हैं।

तत्पश्चात् कोतवाल, श्री रघुनाथसहाय जी ने सबको सुना कर कहा—"शास्त्रार्थ का यह नियम निश्चित हो गया है कि श्री स्वामी जी के साथ एक समय में एक ही पण्डित शास्त्रार्थ करेगा। इस बीच में दूसरा कोई भी न बोले।"



काशी नरेश की अध्यक्षता में बनारस के पन्डितों से महर्षी **का शास्त्रार्थः**
एक ओर सारे पण्डित, एक ओर अकेलदयानन्द।

चार घण्टों तक निरन्तर शास्त्र-समर में पौराणिक दल का प्रत्येक अगुआ बढ़कर स्वामी जी से युद्ध करता रहा और अन्त में महाराज की अकाट्य युक्तियों के तीक्ष्ण तीरों से, उनके प्रबल प्रमाणों के परमास्त्रों से हत-प्रतिहत होकर—परास्त होकर—पीछे लौट आता रहा। इतनी बड़ी संख्या में, ऐसी बड़ी सभा में, इतना बड़ा उद्योग करने पर भी इतने बड़े विद्वानों का, इस प्रकार, ऐसा पराजय इस नगरी में पहले कदाचित् ही हुआ होगा।

सारे महारथी सकल सामर्थ्य से भी जब सफल न हुए तो काशी के महा-

मल्लों ने कूटनीति और दांव-पेच चलाने की सोची। उस समय सूर्य अस्त हो गया। धीरे-धीरे अन्धकार गाढ़तर होता चला जा रहा था। ऐसे समय में, माधवाचार्य ने वेद के नाम से दो पन्ने निकाल कर पण्डितों के मध्य में रख दिये और कहा—"यहाँ पर लिखा है कि, यज्ञ की समाप्ति पर यजमान दसवें दिन पुराणों का पाठ श्रवण करे। अब स्वामी जी! बताइये कि यहाँ 'पुराण' किसका विशेषण है ?

स्वामी जी: – "आप पाठ पढ़ कर तो सुनाइये।"

विशुद्धानन्द जी ने पन्ने पढ़कर स्वामी जी की ओर किये और कहा—आप ही पढ़ लीजिये।"

स्वामी जी ने पन्ने विशुद्धानन्द जी को लौटा दिये और कहा कि आप ही पढ़कर सुनाइये; विशुद्धानन्द जी ने फिर उन्हें स्वामी जी के हाथ में दे दिया और कहा कि मैं चश्मे के बिना नहीं पढ़ सकता, इसलिए आप ही को पढ़ना होगा।

स्वामी जी ने वे पन्ने हाथ में ले लिये परन्तु अन्धेरे के कारण अक्षर स्पष्ट नहीं दिखाई देते थे, इसलिए दीपक मंगाया गया। उन पत्रों पर वेद का कोई नाम न था। मण्डल, अध्याय और मन्त्र आदि का भी कोई पता न लगता था। इसलिए स्वामी जी "दशमेऽहनि किंचित्पुराणमाचक्षीत" इस पाठ के पूर्वापर को ग्रन्थ के नाम और प्रकरण को सोचने लगे। स्वामी जी को विचारते हुए कुछ बहुत पल न होने पाये थे कि श्री विशुद्धानन्द जी यह कह कर उठ खड़े हुए कि अब सन्ध्या का समय हो गया है; इन्हें अधिक कष्ट भी नहीं देना चाहिये। परन्तु स्वामी जी उनका हाथ पकड़ कर बल देते थे कि बैठ जाइये। निर्णय किये बिना, बीच ही में उठ खड़े होना आप-ऐसे विद्वानों को कदापि उचित नहीं। परन्तु विशुद्धानन्द जी ने बैठना स्वीकार न किया और उपहास में स्वामी जी की पीठ पर हाथ फेर कर कहने लगे कि अब बैठिये, जो कुछ होना था सो तो हो चुका।

विशुद्धानन्द जी के सङ्केत से महाराजा ईश्वरीनारायणसिंह जी भी उठ खड़े हुए और अपनी जय प्रख्यात करने के लिए कर-तालिका बजाने लगे। महाराजा के अनुकरण में सारे पण्डित तालियाँ पीटते और जय-जयनाद करते हुए एकाएक उठ खड़े हुए। **पचास-साठ सहस्र मनुष्यों के सभा-सागर में बड़ा**

भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया। सर्वत्र गड़-बड़ मच गई। उस समय, अविवेकी मनुष्यों ने स्वामी जी महाराज पर ईंटें मारीं, पत्थर और कङ्कर फेंके, गोबर और जूते उछाले, अन्य अनेकविध अवहेलना और अपमान किया, परन्तु महाराज के प्रशान्त चित्त-दर्पण पर उदासीनता की यत्किंचित् भी छाया न आई।

कोतवाल महाशय ने उद्दण्ड जनों को वहां से खदेड़ दिया और महाराज को कहा कि ताली पीटने का कार्य आपने अनुचित किया है। उन्होंने उत्तर दिया कि प्रतिमा-पूजन करना हमारा-तुम्हारा परस्पर का धर्म्म है। उसकी रक्षा के लिए शत्रु से जैसे भी जय लाभ हो करना चाहिये।

पक्षपाती लोगों और अबोध जन-समुदाय ने अपनी बड़ी भारी जीत समझी। उन लोगों ने सारे नगर को जयकार से गुंजा दिया। परन्तु फिर भी ऐसे बीसियों विचारवान् मनुष्य वहीं उपस्थित थे कि जिन्होंने पण्डितों की चाल को ताड़ लिया, और स्वामी जी के साथ जो अनीति, अन्याय और धोखा किया गया था, उस पर घृणा प्रकट की।

पण्डित ईश्वरसिंह नाम के एक निर्मल सन्त काशी में वास करते थे। वे वेदान्त के निष्ठावान् विद्वान् थे। उन्होंने उस दिन आनन्दोद्यान से लौटता हुआ जन-समुदाय देखा। उसमें विद्यार्थी, पण्डित और साधारण लोग स्वामी महाराज को अनेक कु-वचन बोलते हुए जा रहे थे। ईश्वरसिंह जी ने वहाँ यह भी सुना कि स्वामी जी पर लोगों ने आज ईंटें, पत्थर, गोबर और जूते फेंके हैं, उन्हें अगणित अपशब्द कहे हैं। उनके चित्त में, उसी समय, यह संकल्प उत्पन्न हुआ कि चलो इसी समय चलकर दयानन्द जी की दशा देखें। यदि इस महा निरादर से, घोर अपमान से, विपरीत नीति से, निष्ठुर अन्याय से उनका चित्त विचलित न हुआ तो समझेंगे कि वह सच्चा ब्रह्मज्ञानी और एक पहुँचा हुआ महात्मा है।

जिस समय ईश्वरसिंह जी आनन्दोद्यान में पहुँचे तो महाराज चांद की चांदनी में टहल रहे थे। ईश्वरसिंह जी को आते देखकर स्वामी जी ने मुस्कराते हुए, बड़े आदर से उनका स्वागत किया। दोनों मिलकर बड़ी रात तक आत्मा और परमात्मा-सम्बन्धी विषयों पर वार्तालाप करते रहे। इतनी लम्बी बातचीत में, ईश्वरसिंह जी को स्वामी जी के चन्द्रसमान चमकते हुए

मुखमण्डल पर उदासीनता का एक भी धब्बा दिखाई न दिया। उनकी मुस्कराहट की चन्द्रछटा में उन्होंने किंचितमात्र भी न्यूनता न पाई। उनके हृदयगत साहस और उत्साह की ज्वालमाला-संकुल ज्वलन्त अग्नि से एक वार भी तो लम्बी सांस का धुआं न निकला। ध्यानपूर्वक देखने पर भी उनके विमल चिदाकाश में, निराशा-बदली की एक भी टुकड़ी न दीख पड़ी। उन्होंने लोगों के अन्याय और अत्याचार की कुछ भी तो चर्चा न चलाई।

पण्डित ईश्वरसिंह जी ने स्वामी दयानन्द के चरण छूकर कहा—"महाराज! आज तक मैं आपको वेद-शास्त्र का ज्ञाता, एक पण्डित मात्र समझता रहा हूँ। परन्तु आज पण्डितों के घृणित उत्पात से, अपमान से, और विरोध की घोर आँधी से आपके हृदय-सागर में राग-द्वेष की एक भी लहर उठते न देख, मुझे विश्वास हो गया है कि आप वीतराग महात्मा और सिद्ध पुरुष हैं।" तत्पश्चात् सन्त ईश्वरसिंह जी महाराज से विदा होकर अपने स्थान को चले आये।

स्वामी जी महाराज शास्त्रार्थ के पश्चात् भी सत्योपदेश देते रहे और अनेक सज्जन उनके सत्सङ्ग से लाभ उठाते रहे। यद्यपि काशी में घोषणा हो गई थी कि दयानन्द के पास कोई न जाय और जो जायगा वह पातकी हो जायगा, परन्तु जिज्ञासुओं ने जाना न छोड़ा। वाद-विवाद करने वाले पण्डित भी आते ही रहे।

इस्लाम का विरोध

काशी में स्वामी जी मुसलमानी मत की भी त्रुटियाँ दिखाया करते थे। इससे कुछ मुसलमान बहुत रुष्ट हो गये थे। एक दिन सायं-काल, महाराज गङ्गा-तट पर आसन लगाये बठे थे। उसी समय, दैव-योग से मुसलमानों की एक मण्डली भी वहाँ आ निकली। उस टोली में बहुत से मनुष्यों ने स्वामी जी को पहचान कर कहा कि यह वही बाबा है, जो कुछ दिन हुए हमारे मन के विरुद्ध व्याख्यान दे रहा था। उनमें से दो मनुष्य बहुत अधिक आवेश में आकर आगे बढ़े और स्वामी जी को उठाकर गङ्गा में फेंकने का यत्न करने लगे। उन दोनों व्यक्तियों ने दोनों हाथों से स्वामी जी की दोनों भुजायें, कन्धों के पास से दृढ़तापूर्वक पकड़ लीं। वे उन्हें झुलाकर गङ्गा धारा में

फेंकना ही चाहते थे कि स्वामी जी ने अपनी दोनों भुजायें सिकोड़ कर अपने शरीर के साथ लगा लीं और वे बलपूर्वक आगे को उछल कर दोनों मनुष्यों हित पानी में कूद पड़े। उन दोनों व्यक्तियों के हाथ कुछ काल तक तो शिकञ्जे में कसे रहे, परन्तु नदी में डुबकी लगाते समय, महाराज ने उन पर दया दिखाकर उन्हें मुक्त कर दिया। वे दोनों मनुष्य बड़ी कठिनता से पानी से बाहर निकले और अपने साथियों के साथ, हाथ में मिट्टी के ढेले आदि लिये, बड़ी देरतक नदी-तट पर खड़े देखते रहे कि वह बाबा सिर निकाले तो उसे मारें! स्वामी जी भी उनकी इच्छा को जानते थे। इसलिए, वे प्राणों को रोक पानी की पेंदी पर पद्मासन लगाकर बैठे रहे। अंधेरा हो जाने पर उस मण्डली ने मन में समझ लिया कि वह बाबा डूब गया है। इसलिए वे चले गये और स्वामी जी भी जल से निकल अपने आसन पर आ विराजे।

निर्भयता

बनारस के बहुत से गुण्डे स्वामी जी के वध के लिए षड्यन्त्र रच रहे थे। उनकी इस दुर्भावना का पता, घुणाक्षर-न्याय से, बाबा श्री जवाहरदास जी को भी लग गया। वे दौड़े हुए स्वामी जी के पास आये और समाचार सुनाकर बड़ी चिन्ता प्रकाशित करने लगे। स्वामी जी ने उन्हें कहा—"आप घबराये नहीं, यह कोई नई बात नहीं है। मेरे साथ तो ऐसी बातें बहुत बीत चुकी हैं। जिन दिनों मैं घर में रहता था, उन दिनों, हमारे एक पड़ोसी भूमिहार ने हमारे एक खेत पर अपना अधिकार कर लिया। पिता जी ने जब पड़ोसी की इस धींगा-धींगी की बात मुझे सुनाई तो मैं आवेश से हाथ में तलवार लेकर उनपर जा टूटा। यद्यपि वे कई मनुष्य थे, परन्तु मेरे साहस के आगे उनके पाँव उखड़ गये और वे भाग निकले। अब भी, यदि यहाँ के गुण्डे इकट्ठे दस-पन्द्रह भी मुझ पर आक्रमण करेंगे तो उनको शान्त करने के लिए मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ।"

हुङ्कारनाद

महाराज का हुंकारनाद ऐसा ऊंचा और तीव्र होता था कि पास बैठों को कानों में उंगलियाँ दे लेनी पड़ती थीं। एक दिन महाराज गम्भीर मुद्रा में हंस

ग्रौर हस्ती की चाल चलते भ्रमण करने जा रहे थे। उसी समय एक हट्टा-कट्टा, डण्डपेल, महामल्ल समान, बलवान् मनुष्य उनके पीछे हो लिया। उसके हाथ में एक सुदृढ़ लठ्ठ भी था। जब महाराज ने पीछे पलट कर दृष्टि फिराई तो वह मनुष्य उन्हें घातक स्वभाव का जान पड़ा। श्री महाराज ने, वहाँ ठहरकर हुंकारनाद ऐसा गुँजाया कि वह उद्दण्ड मनुष्य भयभीत होकर, चीत्कार करता हुग्रा पिछले पाँव भाग गया।

प्रयाग के कुंभ मेले में

संवत् १६२६ के माघ मास में स्वामी जी प्रयाग ग्राये ग्रौर गंगा के किनारे ही टिक गए। वहां बड़ी धूमधाम से ग्रपने प्रचार का प्रारम्भ कर दिया। सारे मेले में स्वामी जी के प्रचार की काफी धूम थी ग्रौर लोग उनके प्रचार से काफी प्रभावित हो रहे थे। एक दिन स्वामी जी गंगातट पर बैठे हुए प्रकृति का स्वाभाविक सौन्दर्य देख रहे थे। उस समय उनके सामने एक स्त्री मरा हुग्रा बच्चा हाथों में उठाये गंगा में प्रविष्ट हुई। कुछ गहरे जल में जाकर उसने बच्चे के शरीर पर लपेटा हुग्रा कपड़ा उतार लिया ग्रौर बालक के निर्जीव शरीर को हाय-हाय करके पानी में छोड़ दिया। स्वामी जी महाराज ने जब देखा कि वह बच्चे के शरीर पर लपेटे हुए कपड़े को धोकर वायु में सुखाती ग्रौर रोती हुई घर को जा रही है तो उन्हें बड़ा दुःख हुग्रा। ग्रौर सोचने लगे कि मेरा देश इतना निर्धन ग्रौर कंगाल है कि माता ग्रपने कलेजे के टुकड़े को तो नदी में बहा चली है पर उसके वस्त्र इसलिए नहीं बहाये कि मिलना कठिन है। तब से स्वामी जी ने प्रण किया कि कुछ काल में इन्हीं की लोगों की भाषा में प्रचार करके इनका दुःख दूर करने का प्रयत्न करूंगा।

मस्तक-शृङ्गार या ग्रात्म-शृङ्गार

प्रयाग में महाराज के पास नाना प्रकार के तिलकधारी लोग बैठे थे, ग्रौर स्वामीजी उन्हें कह रहे थे—मस्तक का शृंगार करने की ग्रपेक्षा ईश्वरोपासना द्वारा ग्रात्मशृंगार किया करो। ऐसा तिलक लगाने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? ग्राडम्बर रचना महात्माग्रों का काम नहीं है–शोक, महाशोक !

तिलक आदि चिन्ह बनाने में लोगों की रुचि है, योगाभ्यास में नहीं। मूर्खों ! जितने समय में तुम यह तिलक लगाते रहे, इतने समय में गायत्री क्यों न जप ली।

स्वामीजी पर मंत्र प्रयोग

प्रयाग से स्वामी जी मिर्जापुर आये। वहां बालकृष्ण दास नाम का एक वैरागी महन्त रहता था। उसने महाभारत में प्रक्षिप्त निकालने के प्रयत्न में भगवद्गीता को भी निकाल दिया। एक धनी व्यक्ति जिसका नाम सुगन्धि लाल था गीता का बड़ा भक्त था। उसने स्वामी जी से आकर कहा, स्वामी जी बोले गीता को प्रक्षिप्त कहना सत्य नहीं है। अगर वे चाहें तो इसपर मुझसे शास्त्रार्थ कर लें। पर वे महन्त नहीं आये। उन्हीं दिनों एक ओझा मन्त्र शास्त्री मिर्जापुर में आकर ठहरा हुआ था। उसने प्रसिद्ध कर दिया कि मेरे पास भी सिद्ध मन्त्र-तन्त्र हैं। यदि कोई उन्हें पुरषचरण करायें तो २१वें दिन निश्चय ही दयानन्द का देहपात हो जायेगा। एक सेठ ने ओझा जी से कह दिया कि जो भी खर्च हो मुझसे ले जाइए लेकिन उस दयानन्द को मार डालिये। वह मन्त्र शास्त्री स्वामी जी पर मन्त्र प्रयोग करने लगा। इसकी खबर लोगों ने स्वामी जी को भी दे दी। परन्तु वे जरा भी विचलित नहीं हुए। दैवयोग ऐसा हुआ कि मंत्र प्रयोग करते हुए अभी तीन-चार दिन भी नहीं हो पाये थे कि यह प्रयोग कराने वाले सेठ के गले पर एक फोड़ा निकल आया और वह दिनों दिन भयंकर होता चला गया। यहां तक की उसको खाने पीने, थूकने और बोलने में भी बड़ा कष्ट होने लगा। जब ओझा उसके पास गया और बोला कि सेठ जी प्रयोग समाप्ति का दिन आ गया है और बलिदान की सामग्री तैयार कर दीजिये। सेठ जी बोले, भई मैंने कहा था दयानन्द का सिर गिराने को तुम तो मेरा ही गिराने लगे। कृपा करके पुरषचरण बन्द कर दो। आखिर उसे बन्द कर देना पड़ा।

स्वामी जी की हुंकार गर्जना भी बड़ी तेज हुआ करती थी। मिर्जापुर की बात है एक रात छोटू गिर ने जो कि स्वामी जी से बहुत द्वेष करता था दो बलिष्ठ आदमी स्वामी जी को तंग करने के लिए भेजे। उस समय वे कुछ शास्त्रीय रहस्य समझा रहे थे। ये गुंडे जाकर बारबार हंसने लगे। एक-दो

बार तो स्वामी जी ने उन्हें कोमल शब्दों में समझाया कि जब टलने में नहीं आये तो स्वामी जी ने जोर की हुंकार गर्जना की। ऐसी जोर की आवाज सुनकर दोनों ही गुंडे मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़े। उन्हें जल के छींटे देकर सचेत किया गया। उस समय वे पसीना-पसीना हो रहे थे। स्वामी जी ने उन्हें समझाया, संन्यासी लोग किसी को मारा पीटा नहीं करते इसलिए डरो मत। अपने कपड़े संभाल लो और चले जाओ।

काशी नरेश का प्रायश्चित

जब स्वामीजी मिर्जापुर में पाठशाला स्थापित करने के बाद फिर काशी लौटे तो महाराजा ईश्वरी नारायणसिंहजी ने अपने किये का प्रायश्चित करने के लिए स्वामी जी को अपने महल में बुलवाया। स्वामी जी के आते ही महाराज उठ खड़े हुए। स्वामी जी का स्वागत किया और सम्मानपूर्वक भीतर लाकर उन्हें सोने के सिंहासन हर बैठाया और माला आदि से उनका सत्कार किया। और बोले हमारे कुल में मूर्तिपूजा की परम्परा चली आती है और मैं भी बचपन से ही कुल धर्म का पालन कर रहा हूँ। इसी धर्मानुराग के कारण शास्त्रार्थ में मुझसे आपकी अवज्ञा हुई। आप संन्यासी हैं, क्षमा कर दीजिये। स्वामी जी ने गम्भीर भाव से कहा, हमारे मन में इन बातों का लेश मात्र भी संस्कार नहीं है। बाद में और भी बहुत सी बातें होती रहीं और महाराज ने अन्त में बहुत सी रजत मुद्राएं आदि देकर स्वामी जी को विदा किया।

मनकी बात जान ली

स्वामी जी के निकटवासी भक्त इस बात का विश्वास करते थे कि स्वामी जी चाहें तो उनके मनोरथों और संकल्पों को जान सकते हैं। एक दिन की बात है वहां स्वामी जी के रसोइये का चाचा आया। और रसोइये से कहने लगा कि स्वामी जी के भोजन कर चुकने पर ही तुम भोजन करते होंगे। इस प्रकार तो रसोई झूठी हो जाती है। इसलिए तुम लकीर निकाल लिया करो और उस लकीर से बाहर ही उन्हें भोजन दिया करो। उस समय स्वामी जी स्नान करने गए हुए थे। जब स्नान करके आये तो चौके के बाहर ही बैठ गए और कहने लगे हमें भोजन यहीं दे दो। रसोइया बोला, भगवन् आगे तो आप

चौके में बैठकर भोजन करते थे। अब क्या बात हो गई कि आप चौके से बाहर बैठ गए हो। स्वामी जी बोले, 'तुम्हें और तुम्हारे चाचा को बिरादरी से बाहर निकाले जाने का भय है न। और मैं कहीं भी भोजन पा लूं, मुझे किसी का डर नहीं है। सुनते ही रसोइये को जैसे काठ मार गया। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उन्होंने हमारे मन की बात कैसे जान ली ?

दलितों की चिंता से विकल

एक रात्रि को महाराज उठ कर इधर-उधर टहलने लगे। उनके पाँव की आहट सुन कर एक कर्मचारी की भी आँख खुल गई। उसने पूछा, "महाराज कोई कष्ट है ?" उन्होंने एक लम्बी साँस खीची और बोले साईई लोग दलितों को ईसाई बनाने का भरसक यत्न कर रहे हैं और रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं। इधर हिन्दूओं के धर्म नेता हैं जो कुम्भकर्ण की नींद सो रहे हैं, यही चिन्ता मुझे विकल कर रही है।" यह घटना दानापुर की है।

श्री केशवचन्द्र सेन से भेंट

स्थान-स्थान पर घूमते हुए स्वामी जी महाराज संवत् १९२९ में कलकत्ता पहुँचे। स्वामी जी के पधारने का समाचार सारे नगर में फैल गया और वहां पर भी सत्संग उपदेश आदि होने लगे। स्वामी जी ने यहां योगाभ्यास करने और गायत्री का अध्ययन करने का उपदेश दिया। बहुत से आसन भी लगा-कर दिखाये। जिस समय स्वामी जी कलकत्ता में थे तब श्री केशवचन्द्र सेन वहां नहीं थे। इसलिए जब वे आये तो महाराज से मिलने के लिए प्रमोद कानन में गए। स्वामी जी ने उनका नाम आदि कुछ नहीं पूछा। बातचीत के बीच सेन स्वामी जी से बोले—आप कभी केशवचन्द्र सेन से भी मिले हैं।

—हां, मिला हूँ।

—वह तो कलकते में नहीं थे। आप उनसे कब मिले ?

—स्वामी जी हंसकर बोले, अभी मिल रहा हूं और आप ही केशवचन्द्र सेन हैं।

—यह आपने कैसे जान लिया कि मैं ही केशवचन्द्र सेन हूं ? स्वामी जी ने उत्तर दिया जैसी बात आपने की है ऐसी किसी दूसरे की नहीं हो सकती।

स्वामीजी की इस उहा शक्ति से वे बड़े प्रसन्न हुए जब उनकी उक्तियाँ सुनीं और अपरिमित प्रतिभा का परिचय पाया तो सेन बोले, शोक है कि वेदों का अद्वितीय विद्वान अंग्रेजी नहीं जानता अन्यथा इंग्लैंड जाते समय भी मेरा इच्छानुकूल साथी होता। स्वामीजी भी हंसकर बोले, शोक है कि ब्रह्म समाज का नेता संस्कृत नहीं जानता और लोगों को उस भाषा में उपदेश देता है जिसे वह समझते ही नहीं हैं। पर स्वामीजी ने सेन की दो बातें स्वीकार कर लीं। एक देश भाषा में व्याख्यान देना और दूसरी सभा आदि में वस्त्र आदि धारण करके जाना।

मुसलमान का आदर

एक दिन स्वामीजी अपने स्थान पर विराजमान थे, उनके पास अनेक जिज्ञासु लोग अपना सन्देह मिटा रहे थे। उस समय एक मुसलमान सज्जन वहाँ आये। वे सत्संग में तो आना चाहते थे परन्तु मकान के भीतर आने में झिझक रहे थे। स्वामीजी ने उन्हें आदर से कहा, बिना संकोच भीतर चले आइये और पास आकर बैठिए। मैं ऐसे तुच्छ भेद-भाव को अच्छा नहीं समझता। उस मुसलमान सज्जन को स्वामीजी के सत्संग में बहुत प्रसन्नता हुई।

स्वामीजी बहुत रात रहते उठ जाते और ध्यानारूढ़ हो जाते, फिर शौच आदि के लिए बाहर दूर जाते, स्नान कुएं पर करते। नित्य कर्मों से निवृत्त होकर ११ बजे तक सत्संग लगाते। उसके बाद भोजन करके थोड़ा विश्राम करते और फिर उपदेश कार्य में लग जाते। रात के ८ बजे तक सत्संग लगा रहता। इस प्रकार स्वामी जी तीन महीने तक कलकत्ता वासियों को कृतार्थ करते रहे।

सर सैयद अहमद खाँ से भेंट

हुगली से स्वामीजी भागलपुर, छपरा, मिर्जापुर और कानपुर होते हुए फर्रुखाबाद आये और पाठशाला में ठहरे। इस बार स्वामीजी की भेंट संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) के छोटे मेयर महोदय से और उसी प्रान्त के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर कमसन से हुई। स्वामीजी के हृदय में गो-रक्षा के लिए

बड़ा गहरा भाव था इसलिए बातचीत में उन्होंने लाट महोदय से कहा अब आप स्वदेश यात्रा करने वाले हैं वहां जाकर आप भारत सचिव की सभा में सम्मिलित होंगे। उस समय भारत के हित का ध्यान अवश्य रखियेगा। गो-वध बन्द कराने का जरूर प्रबन्ध करियेगा। यहीं स्वामीजी की सरसैयद अहमद खां से भेंट हुई और बड़े स्नेहपूर्ण वातावरण में दोनों की बातचीत हुई। सरसैयद अहमद खां स्वामीजी की सेवा में प्रायः रोज ही आया करते थे। उन्हें स्वामीजी से बड़ा अनुराग हो गया था और स्वामीजी भी उन्हें बहुत आदर देते थे।

वृन्दावन में शास्त्रार्थ का चैलेंज

वहाँ से स्वामी जी अलीगढ़, हाथरस, आदि होते हुए वृन्दावन आये और उनका विचार था कि रंगाचार्य से शास्त्रार्थ किया जाये। स्वामी जी की आज्ञा से श्री महवूब मसीह जो चुंगी के सुपरिटेंडेंट थे और स्वामी जी के बड़े भक्त थे ने आर्य भाषा और उर्दू में विज्ञापन छपाकर वृन्दावन में सब जगह लगवा दिये। इसमें कहा गया था कि मूर्तिपूजन और अवतारवाद सिद्ध करने का जिसे भी साहस हो वह आकर शास्त्रार्थ कर ले। रंगाचार्य जी के पास अलग से एक लिखित पत्र भी भेजा गया। रंगाचार्य जी टाल गये और बुद्धिमान लोगों को पूर्ण विश्वास हो गया कि रंगाचार्य जी स्वामी जी के सामने आने से डरते हैं।

मथुरा में

जिन दिनों स्वामी जी मथुरा में थे। मथुरा की पण्डित मण्डली शुरू में तो शास्त्रार्थ करने की बड़ी गप्पें हांकती रही परन्तु उनके सम्मुख कोई नहीं आया। एक दिन कुछ मनुष्यों की उत्तेजना से ४००-५०० पंडित मोटे-मोटे लठ्ठ लिये स्वामी जी के निवास स्थान पर आ पहुँचे। स्वामी जी के सेवकों ने पंडों को ठीक करने के लिये उनसे आज्ञा माँगी परन्तु स्वामी जी बोले इन पंडा लोगों की धर्मान्धता पर आप लोगों को कभी क्रोध नहीं करना चाहिए। हमारे यहाँ आने का इतना तो लाभ हो ही गया कि इन आलसियों में कुछ तो चेतना आई। अन्यथा ये तो खा-पीकर पड़े रहते हैं।

मथुरा में एक मांगेलाल नाम का दुष्ट मुवीन था जो स्वामी जी का बड़ा कट्टर द्वेषी बन गया। उसने उनके नाम पर लांछन लगाने की सोची। एक दिन जब स्वामी जी सेठ लक्ष्मीदास के मकान पर व्याख्यान दे रहे थे। एक कसाई और एक शराब वाला वहाँ आया और बोला, ऐ स्वामी, तुम्हारी तरफ हमारा बहुत दिनों का लेखा हो गया है। दाम देकर चुका क्यों नहीं देते हो। यह सुनते ही वहाँ उपस्थित लोगों की आँखों में खून उतर आया। पर स्वामी जी ने सबको शान्त किया और सभा समाप्त होने के बाद बुलाकर पूछने पर उन्होंने सच्ची बात बता दी और स्वामीजी से क्षमा माँगी।

योगबल का चमत्कार

प्रचार करते हुए स्वामी जी काशी और प्रयाग आये। इस पर अनेक भद्र पुरुषों ने स्वामी जी से योग के साधन सीखे और उनको बड़ा भारी लाभ हुआ। पंडित ठाकुरप्रसाद जी के हृदय में स्वामी जी की योग मुद्रा देखने की बड़ी प्रबल इच्छा हुई। एक दिन स्वामी जी के सेवकों से पूछ कर वे उस कुटिया के भीतर दरवाजे पर जा खड़े हुए जिसके अन्दर स्वामी जी ध्याना-वस्थित थे। दरवाजे बन्द थे लेकिन उनके छिद्रों में से महाराज की आकृति स्पष्ट दिखाई पड़ती थीं। वे बहुत देर तक स्वामी जी के दर्शन करते रहे। उन्होंने यह भी देखा कि महाराज धीरे-धीरे भूमि से ऊपर उठ कर आकाश में स्थित हो गये हैं।

विष मिश्रित मिठाई

एक दिन रायबहादुर पण्डित सुन्दरलाल मित्रों के साथ स्वामी जी के पास गये। स्वामी जी उस समय ध्यान में थे इसलिए वे सब चुपचाप बैठे रहे। कोई आध घण्टे के बाद स्वामी जी भीतर से बाहर आये। सब सज्जनों ने झुककर नमस्कार किया। उस समय स्वामी जी अपने आप ही हँस रहे थे। पण्डित सुन्दर लाल जी ने पूछा, स्वामी जी आप किस बात पर हँस रहे हैं। वे बोले, एक आदमी इधर आ रहा है, कुछ देर ठहर जाइये। उसके आने पर आपको एक तमाशा दिखाई देगा। कोई आधी घड़ी के बाद ही एक ब्राह्मण मिठाई लेकर आ पहुँचा और स्वामी जी नमो नारायण, करके उसने

मिठाई भेंट की और बोला इसमें से कुछ थोड़ा भोग लगाइये। स्वामी जी ने उससे कहा लो थोड़ी सी मिठाई तुम भी खाओ। पर उसने न ली। पर स्वामी जी ने उसे डाँट कर कहा, लेते क्यों नहीं हो। वह काँप तो गया पर मिठाई लेने से झिझकता ही रहा। स्वामी जी बोले यह ब्राह्मण हमारे लिए विष-मिश्रित मिठाई लाया है। पण्डित सुन्दरलाल जी पुलिस को बुलाने लगे। परन्तु स्वामी जी ने रोक दिया और बोले, देखो यह अपने पाप के कारण कितना काँप रहा है। इसे काफी दण्ड मिल गया है। इसलिए पुलिस न बुलायें। उस ब्राह्मण को छोड़ दिया गया। बाद में जानने के लिए उस मिठाई में से थोड़ा-सा अंश पण्डित सुन्दरलाल जी ने वहाँ एक कुत्ते के सामने फेंका। वह कुत्ता मिठाई खाते ही छटपटाते हुए मर गया।

बम्बई में वैष्णव मत का खण्डन

जिन दिनों स्वामी जी गंगातीर पर धर्म प्रचार कर रहे थे। बम्बईवासी उनको बुलाने के लिए बड़े प्रयत्नशील थे। स्वामी जी के भक्त श्री सेवकलाल जी ने काशी शास्त्रार्थ छपा कर इतना बाँटा कि सर्व साधारण को भी महाराज के गुणों का ज्ञान हो गया। जिस समय महाराज बम्बई के रेलवे स्टेशन पर पहुँचे उनके स्वागत के लिए अनेक सज्जन वहाँ उपस्थित थे।

स्वामी जी ने वहाँ वैष्णवों के 'तन, मन, धन अर्पण' का घोर खण्डन किया। इस खण्डन से जीवनजी गोसाईं नामक व्यक्ति स्वामी जी का द्वेषी हो गया। उसने एक दिन स्वामी जी के सेवक बलदेव को गुप्तरूप से बुलाकर कहा। यदि तुम किसी तरह विष आदि देकर स्वामी जी को समाप्त कर दो तो हम तुम्हें एक हजार रुपये देंगे। जीवनजी ने एक हजार रुपये देने के लिये एक पत्र भी लिखकर दे दिया। और ५ रुपये तथा ५ सेर मिठाई उसी समय उसको भेंट की। ज्यों ही बलदेव लौटकर डेरे पर आया स्वामी जी ने उससे पूछा क्या आज तुम गोकुलियों के यहाँ गये थे ? बलदेव बोला, जी, हाँ, मैं गया था। स्वामी जी ने फिर पूछा, सच-सच बताओ वहाँ क्या ठहराकर आये हो। उसने सारी बात महाराज जी को बता दी। स्वामी जी ने कहा, देखो जिसे परमेश्वर न मारे उसे कोई भी नहीं मार सकता। बनारस में मुझे हलाहल विष दिया गया, राव करणसिंह ने पान में विष दिया था।

अन्य भी अनेक स्थानों में मुझ पर विष के भयंकर प्रयोग किये गये परन्तु मेरा प्राणान्त नहीं हुआ। याद रखो अब भी मैं मारा नहीं जाऊंगा। बलदेव स्वामी जी के चरणों को पकड़कर क्षमा माँगने लगा और प्रण किया कि फिर कभी गोसाइयों के पास न जाऊँगा।

बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना का प्रथम प्रयास

बम्बई के अनेक सज्जन स्वामी जी के व्याख्यान सुनकर उनके अनुयायी बन गये थे। उन सबने यह सोचा कि स्वामी जी के विचारों का प्रचार करने और उनको स्थिर रखने के लिए कोई सत्संग स्थापित करना चाहिए। इसलिये मार्गशीर्ष संवत् १९३१ में बहुत से सज्जन मिलकर स्वामी जी के पास आये और बोले, हम आपके उपदेशों से पूरा लाभ उठाने के लिए सत्संग की स्थापना करना चाहते हैं। कृपया आप ही उसका नामकरण कर दीजिये। प्रेमियों के उत्साह भरे बचन सुनकर स्वामी जी को प्रसन्नता हुई और आँखें बन्द करके ध्यान में लीन हो गये। फिर थोड़ी देर बाद बोले इस सत्संग का शुभ नाम आर्य समाज ही रखना उचित है। भक्तों ने बड़े आदर के साथ इस नाम को स्वीकार किया। उसी समय २५ सत्संगियों के नाम लिखे गए। परन्तु कई कारणों से तब आर्य समाज की स्थापना न हो सकी।

बम्बई में स्वामी जी के तीसरे भाषण में साम्प्रदायिक लोगों ने बड़ा शोर मचाया। ईंट, पत्थर और धूल फेंकने लगे। सहायकों ने स्वामी जी से व्याख्यान बन्द कर देने की प्रार्थना की, पर स्वामी जी ने कहा : "अपने भाइयों के फेंके हुए ये ईंट पत्थर मेरे लिए पुष्प वर्षा हैं। व्याख्यान तो मैं समय पर ही समाप्त करूँगा।"

जन्म-प्रान्त गुजरात में

सूरत से चलकर स्वामी जी भरुच पहुँचे, वहाँ नर्मदा के किनारे आश्रम में उन्होंने निवास किया। वहाँ एक माधव राव त्र्यम्बक नाम का एक दक्षिणी पंडित था। उसके बहुत से शिष्य थे, वह एक दिन अपने सभी शिष्यों के साथ सभा-स्थल पर आया। मूर्ति पूजा पर शास्त्रार्थ करने के लिए तैयार हुआ पर थोड़ी ही देर में स्वामी जी की युक्ति-प्रतियुक्ति से हार कर चलता

बना। एक दिन भरुच के प्रसिद्ध वकील श्री जेठालाल जी स्वामी जी से कहने लगे : "महाराज यदि आप शास्त्रों द्वारा मूर्ति पूजा का मंडन करने लग जायें तो हम आपको शंकर का अवतार मानने लग जायेंगे।" स्वामी जी ने उत्तर में कहा, "मुझे विश्वनाथ की पदवी का लालच काशी नरेश ने भी दिया था, परन्तु मैं किसी भी सांसारिक वासना से वशीभूत होकर सत्य का परित्याग कभी नहीं कर सकता। इन वचनों ने जेठालाल के मन पर गहरा प्रभाव डाला।

स्त्रियों के मुख्य धर्म

महाराज भड़ोच में अमृत-वर्षा कर रहे थे तो एक दिन बहुत से भार्गव ब्राह्मण और स्त्रियाँ स्वामीजी का उपदेश सुनने के लिए आये स्त्रियों में अधिक संख्या अद्वैतानन्द की चेलियों की थी। स्वामीजी स्त्रियों से वार्तालाप करना नहीं चाहते थे, किन्तु उनके विशेष आग्रह और अनुरोध पर एक पर्दा उनके और अपने बीच डालकर उन्हें यह उपदेश दिया कि पति-सेवा ही करना तुम्हारा धर्म है और पतियों से ही उपदेश लेना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मन्दिरों आदि स्थानों में आना-जाना और साधु संन्यासियों के दर्शन के लिए इधर-उधर घूमना स्त्री जाति के लिए अत्यन्त अनुचित है। स्त्री जाति का मुख्य धर्म पति-सेवा और उत्तम रीति से सन्तति का पालन पोषण ही है।

आर्य समाज का संगठन

दूसरी बार जब महाराज बम्बई में आए तो स्वामी जी के अनुयायियों ने आर्य समाज की स्थापना के लिए प्रार्थना की और माघ, १९३१ में एक साधारण सभा बुलाकर आर्य समाज के नियमों और उद्देश्यों पर विचार करने के लिए एक उप-सभा बनाई। जब लोगों में थोड़ी सी निराशा-सी आने लगी तो स्वामी जी ने उपदेशों से फिर उत्तेजित किया और तब सर्वसम्मति से श्री पानाचन्द्र आनन्दचन्द पारीख को नियम बनाने के लिए चुना गया।

पारिख महाशय ने थोड़े ही दिनों में आर्य समाज के नियम बनाकर सभा के सामने रख दिये। उन्हें स्वामी जी ने भी अनुमोदित किया। स्वामी जी के

आदेशानुसार चैत्र सुदी १, संवत् १९३२ शनिवार को बम्बई नगर के गिरगांव मोहल्ले में डा० मानिकचन्द्र की वाटिका में सायंकाल आर्यसमाज की शुभ स्थापना हुई।

कुछ नियम

उस समय बनाये गए नियमों में से कुछ मुख्य नियम हैं :—

(१) प्रत्येक सभासद् न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त करे उस में से शतांश 'आर्यसमाज', 'आर्य विद्यालय' और 'आर्य प्रकाश' पत्र के प्रचार और उन्नति के लिए आर्यसमाज के कोष में दें।

(२) जो मनुष्य इन कार्यों की उन्नति और प्रचार करने का जितना प्रयत्न करे उसका उतना ही अधिक सत्कार उत्साह-वृद्धि के लिए होना चाहिए।

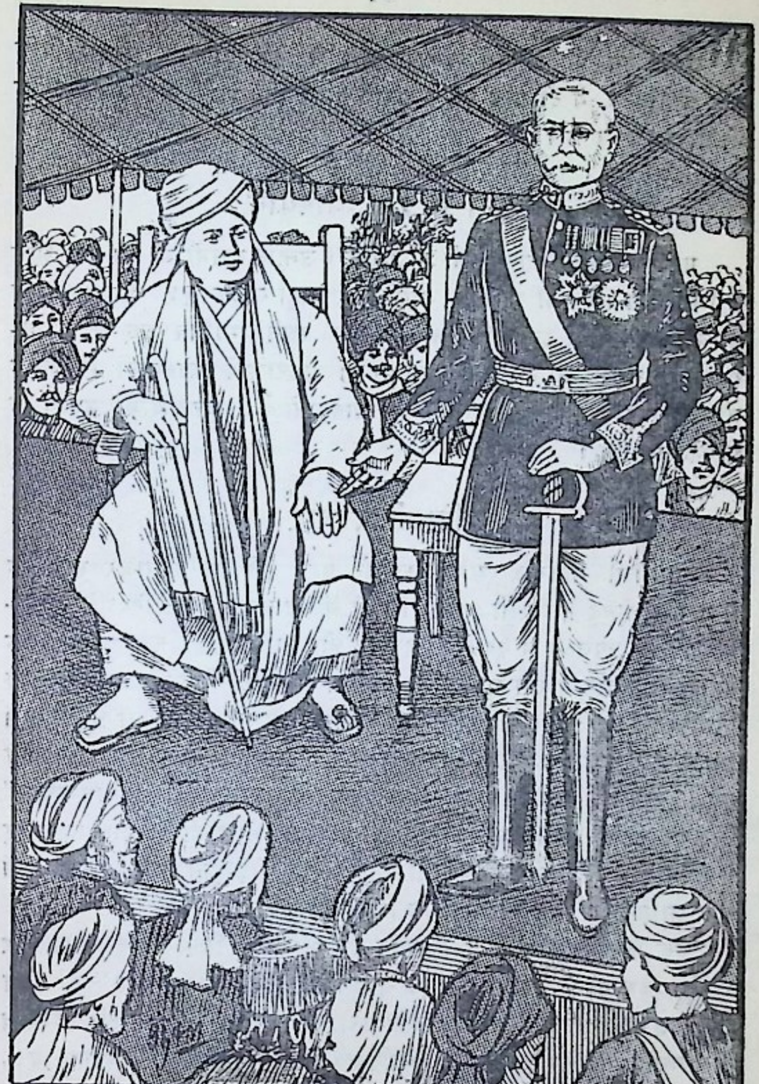
(३) इस समाज में प्रधानादि सब सभासदों को परस्पर प्रीतिपूर्वक, अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोधादि दुर्गुणों को छोड़कर उपकार और सुहृद्भाव से निर्वैर होकर स्वात्मवत् सबके साथ बर्तना होगा।

(४) विचार के समय सब व्यवहार में जो न्याययुक्त, सर्वहित साधक सत्य बात स्थिर हो वह सब सभासदों पर प्रकाशित करके वही बात मानी जाय।

(५) जो मनुष्य इन नियमों के अनुकूल आचरण करने वाला, धर्मात्मा, सदाचारी हो उसको उत्तम सभासदों में प्रविष्ट करना, इसके विपरीत को साधारण समाज में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना। परन्तु यह काम पक्षपात से नहीं करना, किन्तु ये दोनों श्रेष्ठ सभासदों के विचार ही से किये जाएँ, अन्यथा नहीं।

(६) जब तक नौकरी करने और कराने वाला आर्यसमाजस्थ मिलें तब तक और की नौकरी न करे और न किसी अन्य को नौकर रखे। वे दोनों परस्पर स्वामी-सेवक भाव से यथावत् वर्तें।

(७) जब विवाह, जन्म-मरण, अथवा अन्य कोई दान करने का अवसर उपस्थित हो तब आर्यसमाज के निमित्त धन आदि दान किया करें। ऐसा धर्म का काम दूसरा कोई नहीं है, ऐसे समझकर इसको कभी न भूलें।



भारत के जंगी लाट से वार्ता करते हुए महर्षि दयानन्द

बम्बई नगर में सत्यार्थ प्रकाश पहले ही छप रहा था। संस्कार-विधि और आर्याविनय ये दो ग्रन्थ मुद्रित कराये गये। वेदाभ्यास करने का उद्योग भी प्रारम्भ हो गया।

पूना में १५ व्याख्यान

महादेव गोविन्द रानडे पूना में जज थे। उन्होंने स्वामी जी को पूना आने के लिए कहा। स्वामी जी पूना आये और वहाँ उनके १५ व्याख्यान बड़ी धूमधाम से हुए। इन व्याख्यानों से लोग इतने प्रभावित हुए कि स्थान-स्थान पर स्वामी जी की चर्चा होने लगी। महाराज के व्याख्यानों में रानाडे जी भी निरन्तर आया करते थे। व्याख्यानों के प्रबन्ध में भी उनका ही अधिक हाथ था।

दिल्ली दरबार

स्वामीजी महाराज अनेक स्थानों पर होते हुए दिसम्बर मास के अन्त में अलीगढ़ से दिल्ली आये। दिल्ली में महारानी विक्टोरिया के राज्य-अभिषेक के उपलक्ष्य में एक बड़ा दरबार होने वाला था। कहा जाता है कि महाराजा इन्दौर ने ऐसे अवसर पर धर्म-प्रचार करने के लिए स्वामीजी को निमन्त्रित किया था। वे राज-मण्डल में भी उनके भाषण कराना चाहते थे। प्रचार और निवास आदि के लिए शेरमल के अनार बाग में तंबू लगा दिये गये। बाग के दरवाजे पर "स्वामी दयानन्द सरस्वती का निवास-स्थान" लिखकर लटका दिया गया। स्वामीजी के भक्त भी इन्हीं के साथ ठहरे हुए थे। स्वामीजी के सत्संग में हजारों मनुष्यों की भीड़ होने लगी। सभी मतों और जातियों के लोग स्वामीजी के निकट आते जाते थे।

एक दिन महाराज ने अपने स्थान पर, भारत के भिन्न-भिन्न मतों और जातीय विभागों के नेताओं की एक सभा बुलाई उनके निमन्त्रण पर पंजाब के प्रसिद्ध सुधारक कन्हैयालाल अलखधारी, श्री नवीनचन्द्र राय, श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि, सर सय्यद अहमद, श्री केशवचन्द्र सेन और श्री इन्द्रमन, ये ६ सज्जन वहाँ पधारे। स्वामीजी के साथ सबने मिलकर भारत के हित के साधनोपाय सोचे। इस समाज में स्वामीजी ने एक प्रस्ताव रखा कि हम

भारतवासी सब, परस्पर एक-मत होकर एक ही रीति से देश का सुधार करें तो आशा है, भारत देश सुधर जायेगा। उन्होंने श्री केशवचन्द्र सेन आदि सज्जनों को यह भी कहा कि अलग-अलग सभा बनाने की बजाय यदि हम मिलकर एक ही धर्म का प्रचार करें तो बहुत ही अच्छा है। परन्तु कई मौलिक मन्तव्यों में मतभेद होने के कारण वे सब एकता के सूत्र में बंध न सके।

चांदापुर मेले में

उसके बाद स्वामी जी सहारनपुर गये और वहाँ से चांदापुर आये। चांदापुर में ब्रह्म-मेला मनाने का उद्योग हो रहा था। मेले के स्थान पर ही एक स्वच्छ और उत्तम तम्बू में उनका डेरा लगा दिया गया। १६ मार्च को मेला भरने लगा। मौलवी और पादरी अपने दल-बल सहित बड़ी धूम-धाम से उसी तिथि को वहाँ पहुँच गये। दर्शकों कों संख्या भी ५० हजार से ऊपर ही थी। रात के समय, कुछ डरते-डरते से श्री इन्द्रमन जी स्वामी जी से आ कर बोले कि महाराज मौलवीयों की मण्डली आ पहुँची है। मेले में दर्शक मुसलमानों की संख्या भी काफी बड़ी होगी। ये लोग झटपट भड़क उठते हैं, इसलिए आप वाद के समय, अति कोमल शब्दों में काम लीजियेगा। स्वामी जी ने उत्तर दिया : "असत्य का समर्थन करना मेरे लिए असम्भव है। सत्य मेरा बनाया हुआ नहीं है। वह सनातन है और ईश्वर का है। उस सत्य को यथावत् प्रगट करने में मैं किसी से, थोड़ा भी नहीं डरता। आप भी न डरिये।"

२० मार्च को, जिस बात के लिए यह मेला जुड़ा था, सबेरे ७-३० बजे पण्डित, मौलवी और पादरी सभी सभा मण्डप में आये और अपनी कुर्सियों पर बैठ गये। बात की बात में वह विशाल मण्डप दर्शकों से ठसाठस भर गया। समय, योजनानुसार ये ५ प्रश्न सब धर्मावलम्बियों के आगे रखकर उनका उत्तर मांगा :—

(१) सृष्टि को ईश्वर ने किस वस्तु से, कब और क्यों रचा ?
(२) ईश्वर सर्वव्यापक है अथवा नहीं ?
(३) ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार हैं ?
(४) वेद, बाइबल और कुरान के ईश्वर-वाक्य होने में क्या युक्ति है ?

(५) मुक्ति क्या है और किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ?

पादरी और मौलवी साहब द्वारा दिये गये इन पाँचों प्रश्नों के उत्तर से जनता सन्तुष्ट नहीं हुई। जब स्वामी जी महाराज ने वेदों के अनुसार इनके उत्तर दिए और बाद में मौलवियों और पादरियों की शंकाओं का समाधान किया। दोपहर को दूसरी सभा में भी किसी और के तैयार न होने से स्वामी जी ही बोले और इस प्रकार चांदापुर के मेले में वेदों के सामने बाईबिल और कुरान की ज्योति मन्द पड़ गई।

शाक्त लोगों द्वारा हत्या का षड्यन्त्र

एक दिन, बक्षीराम जी मुरादाबादी और श्री इन्द्रमन जी स्वामी जी के निकट बैठे हुए बातें कर रहे थे। उस समय श्री महाराज ने उनको अपनी बीती कथा सुनाई, "जिन दिनों मैं एकाकी घूमता था, उन दिनों में मेरा एक ऐसे स्थान पर जाना हुआ जहाँ सभी शाक्त बसते थे। उन्होंने मेरी बड़ी सेवा-शुश्रूषा की। जब कई दिन के निवास के अनन्तर मैं वहां से चलने लगा तो उन लोगों ने अत्याग्रह से मुझे ठहरा लिया। मैं समझता रहा कि वे भक्ति-भाव से मुझे ठहराते हैं। ऐसे ही बहुत दिन बीत जाने पर उनका पर्व दिन आ गया। उस दिन सारे शाक्त, देवी के मन्दिर में एकत्र होकर गीत गाने लगे। उस दिन उन्होंने मुझे भी कहा कि आज हमारे मन्दिर में महोत्सव है, आप वहां अवश्य चलिए। मैंने बहुत समझाया कि देवी के दर्शनों में मेरा निश्चय नहीं परन्तु वे एक न सुनते थे। पांव पकड़ कर कहने लगे कि यदि आज पर्व के दिन आप मन्दिर में न पधारेंगे तो हमारा सारा उत्साह भंग हो जायेगा। आप मूर्ति को नमस्कार आदि कुछ भी न करना परन्तु हमारे लिये चले तो चलिए।

"वह मन्दिर, नगर से बाहर एक उजाड़ स्थान में था। उनके विवश करने पर मुझे उस मन्दिर में जाना पड़ा। उस समय वहां, आंगन में होम हो रहा था और लोग उत्सव मना रहे थे। मुझे वे दुर्गा की मूर्ति दिखलाने के बहाने भीतर ले गए। मैं सहज स्वभाव से दुर्गा की प्रतिमा के सम्मुख जा खड़ा हुआ। मूर्ति के पास ही एक बलिष्ठ व्यक्ति नंगी तलवार लिये खड़ा था। वहाँ, वे लोग मुझे कहने लगे कि "महात्मा जी ! माता के आगे झुक कर

नमस्कार अवश्य कीजिए।" मैंने उनको स्पष्ट शब्दों में कहा कि मुझ से ऐसी आशा करना दुराशामात्र है। मेरे वचनों से पुजारी चिढ़ गया और पास आकर मेरी ग्रीवा को पकड़ कर मेरे सिर को नीचा करने लगा। उसके इस बर्ताव से मैं चकित हो गया, परन्तु ज्यों ही मैंने दृष्टि फिराई तो क्या देखता हूँ कि वह खड्गधारी मेरे पास आ गया है और मेरी ग्रीवा पर खड्ग बरसाना ही चाहता है।

'इस दृश्य को देखकर मैं तुरन्त सावधान हो गया। मैंने झपट कर उसके हाथ से खड्ग छीन लिया। पुजारी तो मेरे बायें हाथ के एक ही धक्के से मन्दिर की दीवाल से जा टकराया। मैं तलवार लिये मन्दिर के आंगन में आ गया। उस समय आंगन के सभी लोग कुल्हाड़ा, छुरी आदि शस्त्र लेकर मुझ पर टूट पड़े। द्वार की ओर देखा तो उसको ताला लगा हुआ था। अपने आपको बलिदान से बचाने के लिए, मैं उछलकर दीवाल पर चढ़ गया और परले पार कूद कर भाग निकला। उस स्थान के समीप ही एक वन था। दिन भर तो मैं वहां छुपा बैठा रहा, परन्तु जब रात का राज्य विस्तृत हो गया तो रातों-रात ग्रामान्तर में जा पहुँचा। उस दिन से मैंने शाक्त लोगों का कभी भी विश्वास नहीं किया।"

पंजाब में प्रचार

वैशाख, १९३४ में स्वामी जी लुधियाना आये। व्याख्यान आदि होते थे। पण्डितों से वेदभाष्य भी वहां लिखवाया करते थे। लुधियाना में स्वामी जी महाराज ने कुछेक आप-बीतियाँ सुनाईं। जिनमें से एक यह थी :—

"एक बार मैं अपनी कुटी में आसन रमाये बैठा था। उसके पास ही कुछ साधु रहते थे। वे अकारण ही मेरे द्वेषी बन गये। जब रात आई और अंधेरा हो गया तो वे साधु मेरी कुटिया पर आये और वध करने का उपाय सोचने लगे। उनकी बातें मुझे सुनाई पड़ती थीं। थोड़ी देर तक विचार करने के बाद उन्होंने मेरी झोंपड़ी में आग लगा दी। घास-फूस की वह कुटिया आग की लपटों से भस्म होने लगी तो मैं छप्पर को उठाकर बाहर निकल आया।

लाहौर में आर्यसमाज

स्वामी जी लुधियाना से लाहौर आये, और इनके बुलाने में ब्रह्म-समाजियों का ज्यादा हाथ था। स्वामी जी के दो व्याख्यान ब्रह्मसमाजियों ने अपने धर्म मन्दिर में कराये, परन्तु ये दोनों व्याख्यान ब्रह्मसमाजियों के मन्तव्य के बिलकुल विरुद्ध थे। इसलिए उन्हें वे बहुत बुरे लगे। वे ऐसे अधीर हुए कि स्वामी जी का विरोध करने पर उतर आये।

स्वामी जी के भाषण में निर्मूल कल्पनाओं की समालोचना होती थी। इससे बहुत-से पण्डित भी उनके विरुद्ध हो गये। बाद में उनके भक्त-जन उनको डा० रहीमखाँ की कोठी में ले आये। स्वामी जी के प्रचार से अनेक सज्जन उनके अनुयायी बन गये और आर्यसमाज की स्थापना का उद्योग होने लगा। उस समय यह आवश्यक समझा गया कि समाज की स्थापना के पूर्व समाज के पुराने नियमों का नूतन संस्कार किया जाय और वहाँ बम्बई के उन नियमों को संशोधित करके दस नियम बनाये गये, तो आजकल प्रचलित हैं।

समाज का पहला सत्संग डा० रहीमखाँ की कोठी में स्वामी जी के ही पास लगाया गया। इसपर महाराज ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि "अब यह समाज अवश्य ही फूले-फलेगा।"

एक दिन स्वामी जी ने कहा—"वैदिक धर्म-प्रचार का कार्य बहुत बड़ा है। हम जानते हैं कि वह हमारे इस सारे जीवन में पूर्ण न हो सकेगा। परन्तु चाहे दूसरा जन्म धारण करना पड़े, मैं इस महत् कार्य को अवश्य पूर्ण करूंगा।

प्रभु से कोई महान् नहीं

एक दिन, महाराज आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में उस समय पधारे, जब प्रार्थना और उपासना हो रही थी। गुरुदेव को आते देख सारे सभासदों ने उनका अभ्युत्थानपूर्वक स्वागत किया। जब प्रार्थना समाप्त हो चुकी तो महाराज ने उपदेश दिया—"उपासना के समय उपासक जन ईश्वर के सत्संग में निमग्न होते हैं, उस प्रभु से महान् कोई भी वस्तु नहीं है इसलिए उपासना-काल में चाहे कितना ही बड़ा मनुष्य क्यों न आये, उठना नहीं चाहिए ऐसे समय में किसी व्यक्ति के लिए अभ्युत्थान आदि आदर करना उपासना-धर्म

का निरादर है।" सब सभासदों ने विनीतभाव से श्री-वचनों को स्वीकार किया।

नया पन्थ नहीं

यद्यपि, आर्य-समाज में संशोधन और परिवर्तन आदि के सारे अधिकार स्वामी जी के हाथ में थे, परन्तु वे इतने निरभिमान और निर्लेप थे कि जिसका दूसरा दृष्टान्त मिलना अति दुर्लभ है। आर्य-समाज लाहौर के साधारण अधिवेशन में महाशय शारदाप्रसाद जी ने प्रस्ताव किया—"आर्य-समाज के संस्थापक की पदवी से विभूषित किया जाय।" सब सभासदों ने इस प्रस्ताव का सुप्रसन्नता से अनुमोदन किया। स्वामी जी महाराज ने हंसकर कहा—"मैंने कोई नया पन्थ चलाकर गुरु-गद्दी का मठ नहीं बनाया है। मैं तो लोगों को मतवादियों के मठों से स्वतन्त्र करना चाहता हूँ। ऐसी पदवियों से अन्त में हानियाँ ही हुआ करती हैं।"

अद्भुत शक्ति

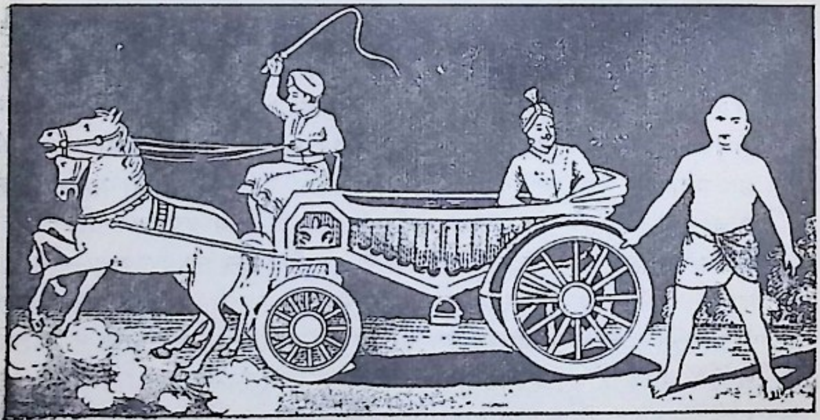
अमृतसर से एक दिन स्वामी जी महाराज अपने निवास-स्थान के एक कमरे में बैठे पण्डितों से वेद-भाष्य लिखवा रहे थे। बीच में एकाएक उठ खड़े हुए और कर्मचारियों को कहने लगे कि पुस्तकादि सभी उपकरण, झट-पट, इस कमरे से बाहर निकाल दो। कर्मचारियों ने उनकी आज्ञा का पालन तो किया, परन्तु वे मन ही मन यह कहते रहे कि स्वामी जी ने यह कष्ट व्यर्थ ही दिया है। जब सारे उपकरण दूसरे कमरे में पहुँच गये तो प्रथम कमरे की छत धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ी। उस समय कर्मचारियों को महाराज की आज्ञा की उपयुक्तता का निश्चय, अति विस्मय के साथ हुआ।

श्री स्वामी जी एक समय उपदेश दे रहे थे। उस समय एक ओर से घोर आंधी, धूलिराशि से भूतलाकाश को एकाकार करती, उमड़ी चली आती दिखाई दी। पवन भी प्रचण्ड रूप धारण करने लगा। झंझावात के उत्पात से जैसे मानसरोवर क्षुभित हो, ऐसे ही वह सत्संग-सरोवर चलायमान हो गया। उठने के लिए लोग दायें-बायें झांकने लगे। उस समय महाराज ने मेज पर करतल-प्रहार कर उच्च स्वर से कहा कि धैर्य्य रखिए, हिलिये नहीं, यहां

आंधी नहीं आयगी। महाराज के कथन से लोग शान्त हो गये और सचमुच आंधी भी वहां नहीं आई।

ब्रह्मचर्य का बल

जालंधर में एक दिन सरदार विक्रमसिंह जी ने निवेदन किया कि सुनते हैं कि ब्रह्मचर्य से मनुष्य महाबली बन जाता है, क्या यह सत्य है? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि ब्रह्मचर्य धारण करने का जो महत्व शास्त्रों ने वर्णन किया है वह सर्वथा सत्य है। तब सरदार महाशय बोले कि महाराज! आप भी तो ब्रह्मचारी हैं। हमें आप में कोई विशेष बल तो प्रतीत नहीं होता। महाराज ने इस बात का कोई उत्तर न दिया। सरदार महाशय बड़ी देर तक सत्संग में बैठे रहे। चलते समय जब नमस्कार करके गाड़ी में आरूढ़ हुए तो महाराज ने उनकी गाड़ी को पीछे से पकड़ लिया। विक्रमसिंह जी ने घोड़ों को बहुतेरे कोड़े लगाये परन्तु वे गाड़ी को न खींच सके। सरदार महाशय ने पीछे की ओर मुड़कर देखा तो महाराज ने गाड़ी को छोड़ दिया और कहा कि ब्रह्मचर्य के बल का प्रमाण आपको मिल गया। सरदार महाशय उनके इस सामर्थ्य पर अति विस्मित हुए।



जालन्धर में ब्रह्मचर्य बल का अपूर्व प्रदर्शन

अमृतसर में शास्त्रार्थ

पंजाब में स्थान-स्थान पर प्रचार करते हुए स्वामीजी फिर अमृतसर में पधारे और सरदार भगवानसिंह के मकान में ठहरे। पण्डितों ने इस बार भी विरोध आरम्भ कर दिया। वे शास्त्रार्थ करने के लिए उद्योग करने लगे। आर्यसमाज अमृतसर की ओर से विज्ञापन द्वारा उनको शास्त्रार्थ के लिए आहूत भी किया गया। शास्त्रार्थ करने का स्थान सरदार भगवानसिंह जी का मकान निश्चित हुआ। उस दिन उस मकान में छः-सात सहस्त्र मनुष्य एकत्र हो गये। नगर के सभी प्रतिष्ठित पुरुष भी उपस्थित हुए। आमने-सामने दो चौकियाँ लगा दीं गई, जिससे वादी और प्रतिवादी को प्रश्नोत्तर करने में सुगमता हो और दूसरा कोई बीच में गड़बड़ भी न कर सके।

नियत समय पर स्वामीजी तो जाकर एक कुर्सी पर विराजमान हो गये, परन्तु प्रतिपक्षियों के आने का कोई पता तक न था। बड़ी देर तक प्रतीक्षा करने पर एक व्यक्ति ने आकर कहा कि पण्डित लोग बाहर खड़े हैं और भीतर आने के लिए आज्ञा माँगते हैं। उत्तर में कहा गया कि वे लोग बिना संकोच, अति प्रसन्नता से पधारें। उन्हीं की तो प्रतीक्षा करते, यह समय होने को आया है।

थोड़ी देर में पण्डित-दल जय-जय नाँद गुंजाता हुआ भीतर प्रविष्ट हुआ। सात-आठ पण्डित तिलक लगाये और बगल में पुस्तकें दबाये अकड़कर स्वामी जी के सम्मुख बैठे गये। इतने में ही उनके चेले-चाँटों ने चारों ओर से ईंट-पत्थर फेंकने आरम्भ कर दिये। सभा-स्थान को धूलि-वर्षा से धूआँ-धार बना दिया। बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न हुआ। ऐसे समय में, जब पुलिस के काण्स्टेबल प्रबन्ध करने के लिए आगे बढ़े तो पण्डित देवता, एक-एक करके चुपके से चम्पत हो गये। उस समय, भगवान् दयानन्द के भक्त अपने भक्ति-भाजन का निरादर होते देखकर, कोपावेश से शान्त न रह सके। वे चाहते थे कि उदण्ड और दुष्ट जनों को वहीं दण्डित किया जाय, परन्तु स्वामीजी ने उनको शान्ति प्रदान करते हुए कहा कि—'मत-मदिरा से उन्मत्तजनों पर कोप नहीं करना चाहिए। हमारा काम एक वैद्य का है। उन्मत्त मनुष्य को वैद्य औषध देता है, न कि उसकी लीला पर उसे मार-पीट करता है। निश्चय

जानिए आज जो लोग मुझ पर ईंट, पत्थर और धूल बरसाते हैं वही लोग आप पर कभी पुष्प-वर्षा करने लग जायेंगे।

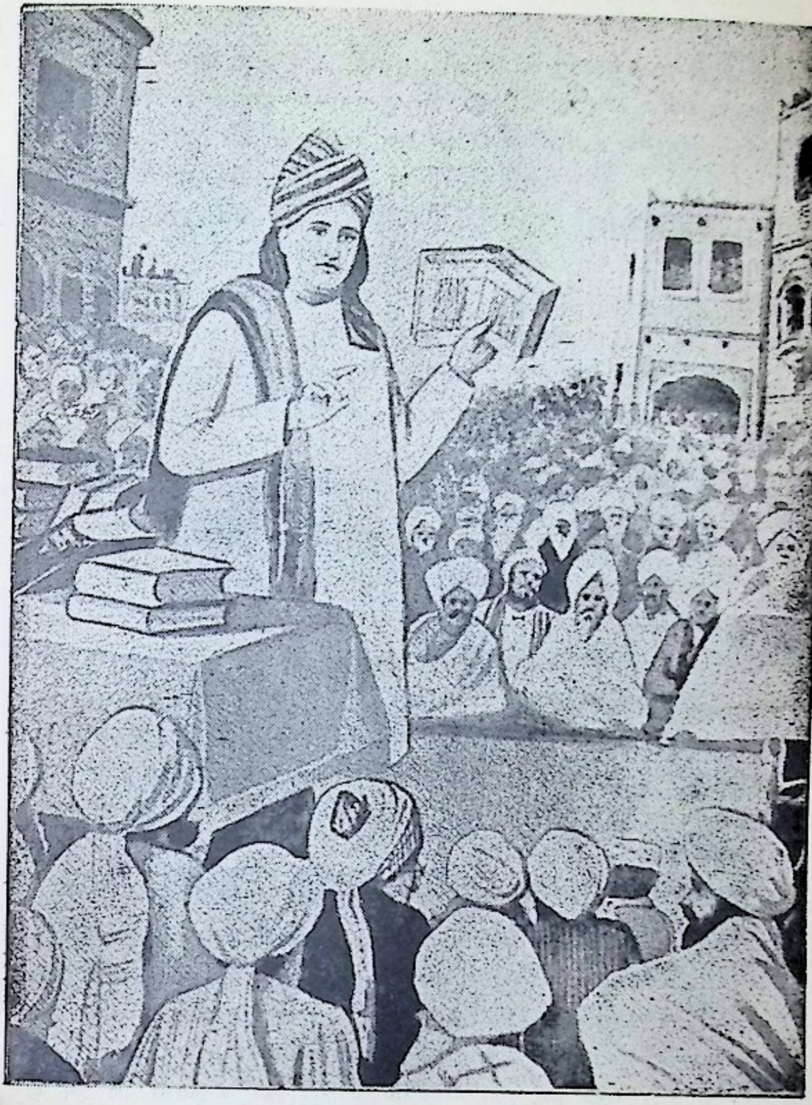
ईंट मारने वालों को लड्डू

अमृतसर में एक बाल-पाठशाला के अध्यापक ने एक दिन अपने छात्रों से कहा कि आज स्वामीजी की कथा में चलेंगे। तुम अपनी झोलियों में ईंट, रोड़े और कंकर भरकर मेरे साथ चलना और मैं संकेत करूं तो तुम कथा कहने वाले पर ईंट, रोड़े और कंकर फेंक देना मैं तुम्हें लड्डू दूंगा। अबोध—बालकों ने अपनी झोलियां भर लीं और अध्यापक के साथ चल पड़े। व्याख्यान रात्रि के ८ बजे समाप्त हुआ करता था। जब कुछ-कुछ अन्धेरा हो गया तो अध्यापक का संकेत पाकर बालक महाराज पर ईंट, रोड़े, कंकर फेंकने लगे, सभा में हलचल मच गई, किन्तु महाराज ने सब को शांत कर दिया। पुलिस कुछ बालकों को पकड़ कर उनके सामने लाई तो बालक फूट-फूट कर रोने लगे। महाराज ने उन्हें ढाढ़स बंधा कर उनसे ऐसा कार्य करने का कारण पूछा, तो उन्होंने सारा वृत्तान्त सच-सच कह दिया। तब महाराज ने बाजार से लड्डू मंगाकर बालकों को दिये और कहा कि तुम्हारा अध्यापक शायद तुम्हें लड्डू न दे, इसलिए मैं ही दिये देता हूँ।

माली के रूप में

जब महाराज अपने डेरे पर पधारे तो एक भक्त ने कहा—"महाराज आज दुष्ट लोगों ने आप पर वहुत धूल-राख फेंकी और आपका घोर अपमान किया।" महाराज ने कहा—"परोपकार और परहित करते समय अपना मानापमान और पराई निन्दा का परित्याग करना ही पड़ता है। इसके बिना सुधार नहीं हो सकता। मैंने आर्यसमाज का उद्यान लगाया है। इससे मेरी अवस्था एक माली की है। पौधों में खाद डालते समय, राख और मिट्टी माली के सिर पर भी पड़ जाया करती है। मुझ पर धूल-राख चाहे जितनी पड़े, मुझे इसका कुछ भी ध्यान नहीं। परन्तु वाटिका हरी-भरी बनी रहे और निर्विघ्न फूले-फले।

जिस कोठी में महाराज विराजमान थे उसी एक के कमरे में रुड़की आर्य-



अमृतसर में वेदों का प्रचार करते हुए महर्षि दयानन्द

समाज की अन्तरंग सभा हो रही थी। सभासद् अभी सभा के कार्यों को यथावत् परिचालन करने में प्रवीण न हुए थे, इसलिए उन्होंने श्री स्वामीजी से निवेदन किया कि सभा में पधार कर शुभ सम्मति से हमें कृतार्थ कीजिए। उन्होंने उत्तर दिया कि सभासद् हुए बिना मैं सम्मति नहीं दे सकता। इस पर तत्काल उन्हें प्रतिष्ठित सभासद् बनाया गया। उस समय स्वामीजी ने उपदेश दिया—'सभा में हठ और दुराग्रह नहीं करना चाहिए। अपने पक्ष की पुष्टि में चाहे जितनी युक्तियां दो, परन्तु प्रकृति और हृदय में ऐंठन न आने दो। किसी बात को पकड़कर इतना नहीं खींचना चाहिए कि परस्पर के भ्रातृ-भाव के तार ही टूट जायँ। बहुमतानुसार जो मत स्वीकृत हो जाय, उस पर फिर हठ नहीं करना चाहिए। अन्तरंग सभा के कार्यों को प्रकाशित करना उचित नहीं है। वह मनुष्य अतीव तुच्छ और ओछा होता है जो किसी गुप्त सम्मति का गोपन नहीं कर सकता। ऐसा मनुष्य विश्वास पात्र भी नहीं रहता।

आर्यसमाज का सदस्य बनाने पर प्रसन्नता

महाराज के जेहलम त्याग से एक दिन पूर्व लाला गंगाराम धम ने एक सज्जन से आर्यसमाज की सभा-सदी का आवेदन पत्र लिखाया, वह उनकी जेब में पड़ा था। अगले दिन जब वह अन्य लोग महाराज को स्टेशन पर पहुँचाने गये तो उन्होंने वह पत्र आर्यसमाज के मन्त्री को दिया। महाराज ने पूछा कि कैसा काग़ज है, तो उन्होंने बतलाया कि एक सज्जन का सभासदी के लिए प्रार्थना पत्र है। महाराज गाड़ी में बैठे, परन्तु इन शब्दों को सुनकर इतने हर्षित हुए कि गाड़ी से बाहर आ गये और प्रेम से लाला गंगाराम को गले लगा लिया।

मनुष्य की मनुष्यता

एक दिन दो उच्च राज-कर्मचारी स्वामीजी से मिले और कहने लगे कि महाराज खण्डन में क्या धरा है, इस से लोग उत्तेजित होते हैं। हम तो उसी कर्म को अच्छा समझते हैं कि जिसमें अपना भला हो। परहित चिन्तन और परोपकार तो ढकोसला है। महाराज ने उत्तर दिया, अपनी भलाई का काम तो गधे और अन्य पशु, पक्षी भी करते हैं, मनुष्य की मनुष्यता तो इसी में है कि दूसरों का उपकार करे।

वायसराय से भेंट

लार्ड नार्थ ब्रुक गवर्नर जनरल व वायसराय से सन् १८७३ में ऋषि दयानन्द की निम्न प्रमाणिक व रेकार्ड हुई भेंट सम्पन्न हुई, जिसमें स्वामी जी की असाधारण दूरदर्शिता तथा देशभक्ति का परिचय मिलता है। यह भेंट- इंग्लैंड के लार्ड बिशप द्वारा आयोजित की गई थी, जो कलकत्ता में ठहरे थे। यह श्रेष्ठ ईसाई पादरी, कुछ बार ऋषि दयानन्द की भाषण सभाओं में, अध्यक्ष भी बन चुका था और स्वामीजी की अद्वितीय विद्वत्ता का बड़ा भारी समर्थक था। इस भेंट से स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये स्वामीजी के हृदय में विद्यमान दृढ़तम भावना का प्रमाण मिलता है। यह भेंट दुभाषिये के द्वारा हुई थी।

साधारण शिष्टाचार के पश्चात् वायसराय ने स्वामीजी से पूछा—पंडित दयानन्द ! मुझे सूचना मिली है कि आप द्वारा दूसरे मत-मतान्तरों व धर्मों की कड़ी आलोचना, उनके हृदय में क्षोभ उत्पन्न करती है और आपके विरुद्ध भयानक विचार उत्पन्न करती है, विशेषत: मुस्लिम और ईसाई जनता के। क्या आप अपने शत्रुओं से किसी प्रकार का खतरा अनुभव करते हैं ? अर्थात् क्या आप सरकार से अपनी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध चाहते हैं।

स्वामी दयानन्द—मुझे अपने विचारों के प्रचार करने की अंग्रेजी राज्य में पूरी स्वतन्त्रता है। मुझे व्यक्तिगत रूप में किसी प्रकार का खतरा नहीं है।

वायसराय—यदि ऐसा है तो क्या आप अपने देश में अंग्रेजी शासन द्वारा उपलब्ध उपकारों का भी वर्णन किया करेंगे ? और अपने व्याख्यानों में जो ईश्वर प्रार्थना आप किया करते हैं, उसमें देश पर अखण्ड अंग्रेजी शासन के लिए प्रार्थना भी किया करेंगे ?

स्वामी दयानन्द—मैं ऐसी किसी बात को मानने में असमर्थ हूँ, क्योंकि यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेरे देशवासियों को अबाध राजनीतिक उन्नति और संसार के राज्यों में समानता का दर्जा पाने के लिए शीघ्र पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। श्रीमान् जी ! **ईश्वर से नित्य सायं प्रातः उसकी अपार कृपा से इस देश की विदेशियों की दासता से मुक्ति की ही मैं प्रार्थना**

करता हूं।

ऋषि दयानन्द के विचारों के इस प्रकार प्रदर्शन से वायसराय घबरा गये और तुरन्त वार्तालाप बन्द कर दिया।

लार्ड नार्थ ब्रूक ने यह घटना अपनी एक साप्ताहिक डायरी में इण्डिया आफिस लण्डन में भेजी और मलका सरकार के सेक्रैटरी असिस्टेंट को लिखा कि उसने इस बागी फकीर की कड़ी निगरानी करने के लिए गुतचर नियुक्त करने के आदेश दे दिये हैं।

हिन्दी राष्ट्रभाषा

स्वामी दयानन्द जी ने अनेक ग्रंथ लिखे, पर वे सब आर्य भाषा में ही लिखे, गुर्जर भाषा में एक भी नहीं लिखा। अपने जन्म-प्रान्त में भी वे अपनी मातृ-भाषा को छोड़कर, आर्य भाषा में ही व्याख्यान देते रहे। इसलिए मुक्त कण्ठ से कहना पड़ता है कि आर्य समाज की मौलिक जड़ में जीवन डालने वाले श्री दयानन्द जी ही थे।

हरिद्वार में एक दिन महाराज अपने आसन पर बैठे सत्संगियों को समझा रहे थे। बीच में एक सज्जन ने निवेदन किया—"यदि आप अपनी पुस्तकों का अनुवाद कराकर फारसी अक्षरों में छपवा दें, तो पंजाबादि प्रान्तों में जो लोग नागरी अक्षर नहीं जानते उनको आर्य धर्म को जानने की बड़ी सुविधा हो जाय।"

महारज ने उत्तर दिया—"अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करता है। नागरी के अक्षर थोड़े दिनों में सीखे जा सकते हैं। आर्यभाषा का सीखना भी कोई कठिन काम है? फारसी और अरबी शब्दों को छोड़कर, ब्रह्मवर्त की सभ्य भाषा ही आर्य भाषा है। यह अति कोमल और सुगम है। जो इस देश में उत्पन्न होकर अपनी भाषा के सीखने में कुछ भी परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है? उसमें धर्म-लगन है, इसका भी क्या प्रमाण है? आप तो अनुवाद की सम्मति देते हैं, परन्तु—दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं कि जब काश्मीर से कन्या-कुमारी तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का प्रचार होगा। मैंने आर्यावर्त भर में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिए ही अपने सकल ग्रंथ

आर्यभाषा में लिखे और प्रकाशित किये हैं।"

अल्काट तथा ब्लैवट्स्की स्वामीजी के चरणों में

सहारनपुर में वैशाख सुदी १३ से ज्येष्ठ वदी २ तक स्वामी जी के तथा उनके शिष्यों के व्याख्यान बड़ी धूम से हुए। कर्नल महाशय और मैडम ने भाषणों में भलीभाँति वेद का महत्व गान किया और क्रिश्चियन धर्म की त्रुटियां प्रदर्शित कीं। इन व्याख्यानों में यूरोपियन भी बहुत आते थे। कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवट्स्की स्वामी जी के स्थान पर जाकर सत्संग में ज्ञान-चर्चा करते, आत्मा-सम्बन्धी प्रश्न पूछते और योगाभ्यास की विधियां सुनते थे। वे दोनों अपने को "आर्य" कहते। नीचे बैठकर भोजन पाते। उन्होंने 'ओ३म्' का पदक और यज्ञोपवीत धारण किया हुआ था। वे महाराज को गुरू मानते थे और उनके प्रति अति-विनय प्रदर्शित करते थे।

महाराज एक दिन श्रीयुत छेदीलाल जी की कोठी में आसनारूढ़ थे। उसी समय अल्काट महाशय और ब्लैवट्स्की महाशया भी आ गईं। उन्होंने महाराज को भक्ति भाव से नम्रीभूत नमस्कार किया। योग-चर्चा चलने पर, अल्काट महाशय ने विनय की—"भगवन्! सुना है कि शंकराचार्य अपने कलेवर से आत्मा को निकाल कर परकाया में प्रवेश कर जाते थे। इसमें आपकी क्या सम्मति है?" स्वामी जी ने उत्तर दिया—"शंकराचार्य का परकाया-प्रवेश करना एक ऐतिहासिक विषय है। उसके सत्यासत्य में, कुछ कहा नहीं जा सकता। हां, इतना तो मैं भी दिखा सकता हूँ कि चाहे जिस अंग में, अपनी सारी जीवन-शक्ति को केन्द्रित कर दूँ। इसमें शेष सारा शरीर जीवन-शून्य हो जायगा। परकाया प्रवेश तो इससे आगे एक पाँव उठाना मात्र ही है।" अल्काट महाशय अपने गुरु के ऐसे योग-बल को जान कर अतीव हर्षित हुए।

कायमगंज के निवासी, श्री रामलाल जी वर्षा ऋतु के कष्ट झेलते हुए, मुरादाबाद में इसलिए आकर ठहरे थे कि स्वामी जी से यज्ञोपवीत धारण करें। महाराज ने रामलाल के धर्मभाव और दृढ़ धारणा को देखकर शुभ समय पर विधिपूर्वक, उसे यज्ञोपवीत प्रदान किया है। गायत्री का उपदेश करके शुभ शिक्षा दी।

दुखी कौन, सुखी कौन ?

किसी किसी दिन महाराज व्याख्यान में शिक्षाप्रद कहानी भी सुना देते थे। एक दिन सहारनपुर में व्याख्यान देते हुए और यह बतलाते हुए कि दुखी कौन और सुखी कौन है, महाराज ने यह कहानी सुनाई—"एक धनाढ्य महाजन था। उसका एक मुकद्दमा अदालत में चल रहा था। मुकद्दमे की पेशी की तारीख से कई दिन पहले ही उसे इस चिन्ता ने आ घेरा कि देखें उस दिन क्या होगा ? इस चिन्ता के कारण उसे नींद तक न आती थी। उसके नौकर चाकर अपना काम करके चले जाते और निश्चित होकर सुख की नींद सोते, परन्तु वह सारी रात पलंग पर करवटें बदलता रहता। पेशी के दिन वह पालकी में बैठकर अदालत में गया। कहार तो पालकी रख कर चिलम पीने लगे, उन्हें किसी बात की चिन्ता न थी, परन्तु महाजन चिंतित और उदास ही रहा।" इससे सिद्ध होता है कि धन से सुख नहीं।

शरीर पर विष का प्रभाव

महाशय रामलाल ने गुरुदेव के उपदेशामृत को सिर-आँखों पर स्वीकार किया, अन्तःकरण में बसा लिया। रामलाल जी दस दिन पर्यन्त श्री चरण-शरण में सत्संग लाभ करते रहे। एक दिन उन्होंने बद्धांजलि होकर विनय की—"भगवान् ! आपके आरोग्य पर कोई आघात हुआ जान पड़ता है।" महाराज ने कहा..."इस देह को कई बार विकट तथा विषम विष दिया गया है। ऐसे कालकूट विषों को, कितना ही योग-क्रियाओं से वमन तथा बस्ति-कर्म्म द्वारा, निकाल दिया जाए परन्तु रक्त में मिश्रित हुआ हलाहल विष सर्वांश में नहीं निकालता। उसका प्रभाव कुछ-न-कुछ बना ही रहता है। यही कारण है जो मेरे स्वास्थ्य की आधार-शिला हिल गई है। यदि मुझ पर ऐसे भीषण विष-प्रयोग न किए जाते तो शरीर पर शिथिलता का चिह्न, एक शताब्दी में तो कदापि न दीख पड़ता और न ही इतनी देर तक जरा-रोग इसके पास फटकने पाता।"

माता-पिता की सेवा नहीं की

रामलाल जी ने फिर प्रार्थना की—"गुरुदेव ! जब आप, अपने जनों को

नैराश्यनिशा दिखाने वाला शब्द कहने लग गये हैं तो आप ऐसे सुयोग्य शिष्य क्यों नहीं बनाते जो नौका के निपुण नाविक बन सकें, जो सर्वस्व स्वाहा करके भी आपके उद्देश्य की पालना करें ?"

महाराज ने गम्भीर भाव से कहा—"वत्स ! मैंने पहले-पहल पाठशालायें चलाकर अनेक पंडित शिष्य बनाए। वे लोग मेरे सम्मुख तो बहुतेरी विनय-अनुनय प्रदर्शित करते परन्तु मुझ से पृथक् होकर वैसे-के-वैसे पौराणिक बने रहते। कई एक तो मेरे प्रतिकूल अपनी चालों का ताना-बाना तनने लग जाते। अब तो मुझे निश्चय हो गया है कि इस जन्म में, सुयोग्य शिष्य नहीं मिलेगा। इसका प्रबल कारण भी है। मैं तीव्र वैराग्य-वश, यौवन-काल ही में, अपने पूज्य माता-पितादि परिवार-परिजन का परित्याग कर मृत्यु को जीतने के लिए योगाभ्यास करता रहा हूँ। मैंने घर छोड़ते समय माता की ममता का कोई ध्यान नहीं किया। पितृ-ऋण भी नहीं उतारा। ये ऐसे कर्म हैं जो मुझे सुयोग्य शिष्य मिलने के मार्ग में प्रबल प्रतिबन्धक हैं। परन्तु निराशा की कोई बात नहीं है। आर्यसमाज में ऐसे जन अवश्य प्रकट होंगे, जो मेरे परम लक्ष्य का पूर्णता से पालन करेंगे।"

गिरजाघर में उपदेश

पादरी स्काट के साथ महाराज की प्रीति थी। बरेली में स्काट महाशय, अत्यादर से प्रतिदिन व्याख्यान में आते थे। वह पहला ही दिन था कि उनके निरन्तर आने में अन्तर पड़ा। स्वामी जी ने व्याख्यान के पश्चात् पूछा कि भक्त स्काट नहीं आये ? किसी ने उत्तर दिया कि आदित्यवार को उनका गिर्जा होता है, इसीलिए वे नहीं आ सके। भवन के बाहर आकर महाराज ने कहा कि चलो, आज भक्त स्काट का गिर्जा देख आयें। तीन-चार सौ मनुष्यों के साथ स्वामी जी गिर्जे में पहुँचे। स्वामी जी को आते देख स्काट महाशय तत्काल वेदी पर से नीचे उतर आये और प्रार्थनापूर्वक महाराज को वेदी पर ले जाकर उपदेश के लिए विनय की। उनके आग्रह पर स्वामी जी ने वहाँ कोई एक घड़ी पर्यन्त उपदेश दिया और मनुष्यों को ईश्वर न मानने में दोष दिखाये। लोगों ने उनके भाषण को एकाग्रचित होकर श्रवण किया।

सिंह-गर्जना

बरेली में जब खण्डन का खड्ग चला, तो और तो और, कमिश्नर-कलक्टर इत्यादि भी रुष्ट हो गये। उन्होंने लाला लक्ष्मीनारायण को, जिसके पास स्वामीजी ठहरे हुए थे, कहा कि स्वामीजी को रोको, परन्तु स्वामीजी तक यह बात पहुँचाये कौन ? निदान कांपते-डरते यह बात महाराज के कानों तक पहुँचाई गई। उस दिन के व्याख्यान में भी सब सरकारी हाकिम आये हुए थे। महाराज ने सत्य का महत्व वर्णन करते हुए कहा कि लोग कहते हैं कि सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रूद्ध होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा—अरे चक्रवर्ती राजा क्यों न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे। इतना कह कर महाराज ने एक उपनिषद्वाक्य पढ़ा, जिसमें कहा गया था कि ात्मा को कोई हथियार छेदन नहीं कर सकता, न उसे आग ही जला सकती है और फिर गरज कर बोले—"यह शरीर तो अनित्य है। इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नष्ट कर दे" और फिर चारों ओर अपने नेत्रों की ज्योति डाल कर, सिंहनाद करते हुए कहा—परन्तु मुझे वह शूरवीर दिखलाओ जो यह कहता हो कि वह मेरे आत्मा का नाश कर सकता है। जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता, तब तक मैं यह सोचने के लिये भी तैयार नहीं हूँ कि मैं सत्य को दबाऊंगा या नहीं ?

मुंशीराम प्रभावित हुए

जिन दिनों में महाराज बरेली में धर्म-प्रचार कर रहे थे उन्हीं दिनों युवक मुंशीरामजी के पिता यहाँ नगर के कोतवाल थे। युवक अपने पिता के पास ही आया हुआ था। उस समय वह राजकीय महाविद्यालय में अध्ययन करता था। ईश्वर और वेद में उसका विश्वास न था। धर्म-कर्म में भी उसकी धारणा न थी।

मुंशीरामजी के पिता पुराण-धर्म में बड़े निष्ठावान् थे। प्रतिदिन तीन घन्टे तक पूजा-पाठ का परायण करते। उन्होंने स्वामीजी का पहला व्याख्यान श्रवण किया और घर पर आकर अपने पुत्र से कहा—"मुन्शीराम ! यहां एक

दण्डी स्वामी आये हैं। बड़े विद्वान् और योगीराज हैं। उनके उपदेश सुनने से तुम्हारे सारे संशय अवश्य दूर हो जायेंगे।" पुत्र ने कहा—"बहुत अच्छा, कल मैं आपके साथ अवश्य चलूंगा। परन्तु उनके मन में यही धारणा बनी रही कि वह संस्कृत-मात्र जानने वाला साधु कोई बुद्धि की बात क्या बता सकेगा? आगामी दिन जब सत्संग में गये तो महाराज के दर्शन से ही वे प्रभावित हो गये। स्काट महाशय आदि योरुपीय सज्जनों के हृदय में स्वामीजी का महत्व देख, उनमें और भी लगन बढ़ी। परन्तु जब पाव घड़ी पर्यन्त उपदेश सुन लिया तो मुंशीरामजी की विचार परम्परा में बड़ा भारी पलटा आ गया। वे भगवान् के यौक्तिक कथनों पर आश्चर्यचकित हो गए। दैव-योग से उस दिन उपदेश भी परमात्मादेव के 'ओ३म्' नाम पर था। वह व्याख्यान उनके लिए अभूतपूर्व था। इसलिए उनको अपार प्रसन्नता प्राप्त हुई। उस दिन से वे प्रायः महर्षि के उपदेशों को सुनते रहे।

अब मुन्शीरामजी को यह धुन समाई कि महाराज की जीवनचर्या को देखना चाहिए। इस लगन में मग्न वे पहली बार तो रात के ढाई बजे ही गाड़ी में बैठकर उस उद्यान के निकट जा पहुँचे, जहां महाराज का निवास था। कोपीन-मात्र धारण किए जब ऋषि उद्यान-द्वार से बाहर भ्रमणार्थ आने लगे तो वे पीछे-पीछे हो लिये। महाराज की गति का वेग इतना तीव्र था कि यह युवक थोड़ी देर ही पीछे चलकर हाँपने लगा और गाड़ी में बैठकर घर चला आया। परन्तु अगले दिन उनकी लगन की मात्रा इतनी बढ़ गई कि वे रात के बारह बजे उठ बैठे और उद्यान के समीप जा खड़े हुए। इस बार वे बहुत दूर तक उनके पीछे गए। वे महाराज को कुछ काल तक ध्यानावस्थित भी अवलोकन कर सके।

मुन्शीराम जी ने अपने तर्क-शक्ति के अभिमान में महाराज के साथ ईश्वर विषय में प्रश्न किए, परन्तु स्वामीजी की युक्तियों ने उन्हें दस पल में अवाक् बना दिया। युवक ने तीन बार ये वाक्य दुहराए—महाराज! आपने मेरा मुंह तो बन्द कर दिया, परन्तु अभी तक मुझ में विश्वास का अंकुर उत्पन्न नहीं हुआ।" स्वामीजी ने उत्तर दिया—"महाशय! आपकी युक्तियों का मैंने युक्तियों से खण्डन कर दिया है। विश्वास तो परमात्मा की कृपा से हुआ करता है।"

भ्रष्ट भोजन कौन सा ?

एक दिन सुखवासी लाल साध स्वामी जी के लिए कढ़ी और भात बना कर लाये और उन्होंने उसे खाया। इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि आप भ्रष्ट हो गये, जो साधों के घर का भोजन खा लिया। महाराज ने उत्तर दिया कि भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है, एक तो यदि किसी को दुःख देकर प्राप्त किया जाय और उससे अन्न आदि क्रय करके भोजन बनाया जाय। दूसरे भोजन मलिन हो या उसमें कोई वस्तु गिर जाय। साध लोगों का परिश्रम का पैसा है, उनसे प्राप्त किया हुआ भोजन उत्तम है।

मनोमन्दिरों से मूर्तियाँ निकालना चाहता हूँ

जिन दिनों स्वामीजी फर्रुखाबाद में थे एक दिन उनके बाजार की नाप हो रही थी। उसी सड़क में एक छोटी-सी मढ़िया थी। उसमें लोग धूप-दीप किया करते थे। श्री मदनमोहनलाल ने आकर स्वामीजी को कहा—"महाराज! स्काट महाशय आपको बहुत मानते हैं। यदि आप उनको संकेत भी कर दें तो यह मढ़िया मार्ग में से मार्जित हो सकती है। भ्रम का स्थान दूर हो सकता है।" स्वामीजी ने उनसे कहा— ऐसी उलटी पट्टी मुझे न पढ़ाइये। ऐसे टेढ़े, तिरछे और तीखे मार्गों से किसी मत को हानि पहुँचाना अधर्म है। द्रोह, नीचता और अन्याय है। मुसलमान बादशाहों ने सैंकड़ों मन्दिरों को मूर्तियों सहित मलियामेट कर दिया, परन्तु मूर्ति-पूजा बन्द करने में सफल न हो सके। हमारा काम तो, मनुष्यों के मनोमन्दिरों से मूर्तियाँ निकालना है, न कि ईंट-पत्थर के बने देवालयों को तोड़ना-फोड़ना।"

सत्य को नहीं छिपा सकता

रानापुर के महाशय गुलाबचन्द लाल जी स्वामीजी के भक्तों में से थे। उन्होंने एक दिन निवेदन किया, "महाराज ! मुसलमानों के विरुद्ध कुछ भी न कहिएगा। ये लोग चटपट बिगड़ बैठते हैं, और लड़ाई-झगड़े पर उतर आते हैं।" स्वामीजी उस समय तो मौन रहे, परन्तु व्याख्यान में मुसलमान मत पर तीक्ष्ण, तर्क-तीर वर्षा करते हुए बोले—"छोकरे मुझे कहते हैं कि मुसलमान

मत का खण्डन न कीजिए। मैं सत्य को कैसे छिपा सकता हूँ? जब मुसलमानों की चलती थी, उन्होंने हमारा खण्डन खड्ग से किया। परन्तु अन्धेर की बात है कि आज मुझे वचनों द्वारा खण्डन करने से भी रोका जाता है। भला मतमतान्तरों की पोल खोलने से मैं कैसे रुक सकता हूँ।

योग भ्रष्ट को तुरन्त लाभ

ठाकुरदास नाम के एक सज्जन दानापुर में वास करते थे। उन्हें योगभ्यास की जब लगन लगी तो उन्होंने एक निपट अनाड़ी मनुष्य से प्राणायाम सीखना आरम्भ कर दिया। विधि-विहीन, उलटी-पुलटी रीति से पूरक, रेचक और कुम्भक करने पर उनके प्राण प्रकुंपित हो गये। नाभि कमल-निवासी, अपान पवन में गाँठ पड़ जाने से उन्हें सदा पीड़ा रहने लगी। इससे, बड़े दुर्बल और कृश हो गये। एक दिन उन्होंने महाराज के आगे अपने रोग का वर्णन किया। महाराज ने उनको आश्वासन देते हुए कहा—"योगासन से, हम आपका तीन वर्षों का रोग दो-ढाई पल में दूर कर देंगे।"

महाराज ने ठाकुरदास को एक कोठरी में लेजाकर पीठ के बल लिटा दिया और घुटने खड़े रखवाये। उनके पांव पर अपने पांव रखकर दबाव डाला और दूसरी ओर से उनका सिर ऊपर को उठाया। इस क्रिया से वे तत्काल स्वस्थ हो गये। उनकी व्याधि दूर हो गई।

व्यंग्य भाव में उपदेश

इस प्रेमी पुरुष ने प्रार्थना की—"महाराज! अभ्यास में मन लगाने का बहुत ही यत्न करता हूँ, परन्तु इसके तरल तरंग अभंग ही बने रहते हैं, संकल्प-विकल्प शान्त ही नहीं होते।" स्वामीजी ने व्यंग्यभाव से समझाया, "मन नहीं टिकता तो भाँग-भवानी का एक लोटा और चढ़ा लिया करो।" उत्तर सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। वह मन ही मन कहने लगा कि स्वामी जी को तो 'स्थाली पुलाक न्याय' से भी पता नहीं है कि मैं भाँग पीता हूँ। फिर यह जान कैसे गए? सच हैं सत्पुरुषों के सामर्थ्य की कोई सीमा नहीं पा सकता। एक महाशय ने एक दिन निवेदन किया—"भगवान्! उपासना में चंचल चित्त को टिकाने के लिए किसी योग-क्रिया का उपदेश दीजिए।

स्वामीजी ने व्यंग्य वचन से शिक्षा दी कि एक और विवाह कर लो, फिर चित्त आप ही स्थिर हो जायेगा। यह उत्तर सुनकर, वह मनुष्य अति-लज्जित और विस्मित हुआ। लज्जा तो उसे इसलिए आयी कि स्त्री के जीते जी दूसरा विवाह कर लिया था, और आश्चर्य इसलिए हुआ कि बिना बताये महाराज को इसका ज्ञान हुआ तो कैसे हुआ ?

शिष्टाचार की मूर्ति

महाराज सत्य को अति महत्व देते थे। उनका निश्चय था कि जब तक किसी जन अथवा जाति में सत्य नहीं आता तब तक उसकी उन्नति के दिन सुदूर ही रहते हैं। सत्यवादी मनुष्य के लिए वे अति प्रेम व सम्मान प्रदर्शित किया करते। महाराज व्याख्यान-स्थान में आते समय सबको नमस्ते कहा करते। मेल-मिलाप के समय भी नमस्ते उच्चारण करते। उनके पास कोई कितना ही साधारण परिस्थिति का मनुष्य क्यों न जाता वे मुस्कराते हुए पहले नमस्ते कहा करते। उनके इस शिष्टाचार पर प्रेमीजन मोहित हो जाते थे।

स्वदेशी वस्तु अपनाने ही में शोभा है

एक दिन का वर्णन है कि ठाकुर ऊधोसिंह छानल निवासी अपने पिता और ठाकुर भूपालसिंहजी के साथ महाराज के दर्शन करने के लिए अलीगढ़ में आये। उस दिन ऊधोसिंहजी के वस्त्र नये ढंग के थे और सबके सब विलायती कपड़े के बने थे। स्वामीजी ने अति प्यार से कहा, "ऊधव ! देखो, तुम्हारे पिता कैसे मोटे, सादे और अपने देश के कपड़े से बने वस्त्र पहनते हैं। उनका जाति बिरादरी में कितना अधिक सम्मान है। क्या तुम इस विदेशी कपड़े से बने नये वेश से विभूषित होकर अपने पिता से अधिक अच्छे हो गये हो ? ऊधव ! अपने ही देश के वस्तु-वेश को अपनाने में शोभा है।"

स्वामीजी का यह उपदेश ऊधोसिंह के हृदय में घर कर गया और घर पहुँचते ही उन्होंने विदेशी वस्त्रों को उतार फेंका।

निरभिमानता

महाराज में निरभिमानता चरम सीमा को पहुँची हुई थी। अहंकार

का लेश भी न था। एक बार एक भद्र पुरुष ने उन्हें कहा—'भगवन् आप तो ऋषि हैं।" महाराज ने उत्तर में कहा—"ऋषियों के अभाव में, आप लोग मुझे ऋषि कह रहे हैं। परन्तु सत्य जानिये, यदि मैं कणाद ऋषि का समकालीन होता तो विद्वानों में भी अति कठिनता से गिना जाता।"

आर्यों को सन्देश

काशी में श्री रामाधर जी ने एक दिन लम्बी सांस लेकर कहा—"भगवन्! आप इतना पुरुषार्थ करते हैं, परन्तु लोग पौराणिक लीलायें छोड़ते ही नहीं। उन्हीं लोगों में रहकर सुधार कैसे होगा? ये कहीं हमें भी तो न ले डूबेंगे?" स्वामी जी ने ढाढस बंधाते हुए कहा—"ब्रह्मसमाजियों और ईसाइयों की भांति पृथक् होकर, सामूहिक जातीय जीवन की मात्रा को घटा देना हमारा उद्देश्य नहीं है। इन्हीं लोगों में रहते हुए अपने कर्त्तव्य-कर्म को करते जाओ। वैदिक धर्म का प्रचार करो। ये लोग यदि आपका विकट विरोध करें और घृणा करें तो भी इनको अपनाने का प्रयत्न करो, परन्तु अपनी धर्म-धारणा से एक उंगली भर भी इधर-उधर नहीं झुकना चाहिए। अन्त में ये सब आपका रूप बन जायेंगे। उतावली से कुछ मनुष्य आगे निकल सकते हैं, परन्तु शोभा सबको साथ लेकर आगे बढ़ने में है।"

मेरठ आर्यसमाज के उत्सव पर, अन्तिम व्याख्यान देते समय, उस अन्तिमाश्रमी महापुरुष ने अतीव अन्त की शिक्षायें दी। उन्होंने कहा—"मुझे लोग कहते हैं, जो कोई आता है आप उसे ही भरती कर लेते हैं। मेरा इस विषय में स्पष्ट उत्तर है कि मैं वेद ही को सर्वोपरि मानता हूँ। वेद ही ऐसी पुस्तक है कि जिसके झण्डे तले सारे आर्य आ सकते हैं। इसलिए जो मनुष्य कह दे कि मैं वेदों को मानता हूँ और आर्य हूँ, उसे आर्यसमाज में सम्मिलित कर लो। ऐसे विश्वासी को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। लोग भिन्न-भिन्न भेद पर अधिक दृष्टिपात करते हैं परन्तु आप लोग परस्पर भेद-मूलक बातों की अपेक्षा मेल-मूलक बातों पर अधिक ध्यान दो। तुच्छ भेदों और विरोधों को त्याग कर मेल-जोल की बातों में मिलाप सम्पादन करो। आपस में मिलती बातों में मिल जाने से विरोध और भेद स्यंमेव मिट जाते हैं।

"अब आपको अपना कर्त्तव्य आप पालन करना चाहिए। अपने जीवन को ऊँचा बनाओ और अपनी आवश्यकताओं को आप पूर्ण करो। इस समय तो यह अवस्था है कि जब कोई प्रबल प्रतिपक्षी आ जाता है तो आप तार पर तार देकर, मुझे ही बुलाते हैं। किसी संशय के उत्पन्न होने पर मुझ पर ही अवलम्बित रहते हो, उपदेश कराने हों तो मुझ पर ही निर्भर करते हो। जब कभी आप में परस्पर की फूट, फूट निकलती है, वैमनस्य बढ़ जाता है, अनबन बढ़ने लगती है और वैर-विरोध उत्पन्न हो जाता है तो उसे मिटाने की चिन्ता मुझे ही करनी पड़ती है। मैं ही आकर आप में शान्ति-स्थापना करता हूँ। आपके अन्तःकरणों में अवनतिकारी अन्तर नहीं पड़ने देता। आपके पारस्परिक स्नेह के सुकोमल सूत्र को छीजने नहीं देता। परन्तु महाशयो! मैं कोई सदा नहीं बना रहूँगा। विधाता के नियम-न्याय में मेरा शरीर भी क्षणभंगुर है। काल अपने कराल पेट में सबको पचा डालता है। अन्त में इस देह के कच्चे घड़े को भी उसके हाथ टूटना है।

'सोचो, यदि अपने पांव खड़ा होना नहीं सीखेगे तो मेरे आँख मीचने के पीछे क्या करोगे? अभी से अपने को सुसज्जित कर लो। स्वावलम्बन के सिद्धान्त का अवलम्बन करो। अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के योग्य बन जाओ। किसी दूसरे के सहारे की अपेक्षा अपने ही पर निर्भर करो। मुझे विश्वास है कि आप में ऐसे अनेक सज्जन उत्पन्न होंगे जो उत्तमोत्तम कार्य कर दिखायेंगे। प्राणपण से अपने पवित्र प्रणों की पालना करेंगे। आर्यसमाज का बड़ा विस्तार हो जायेगा। कालान्तर में ये वाटिकायें हरी-भरी, फूली-फली और लहलहाती दिखाई देंगी। ईश्वर-कृपा से वह सब कुछ होगा, परन्तु मैं नहीं देख सकूंगा।"

महाराज के इस भाषण का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। सबके हृदय उछल पड़े। गात रोमांचित हो गये। उनकी आँखें आँसुओं के बादलों से आच्छादित हो गईं। महाराज के कथन से ऐसा प्रतीत होता था कि वे होनी की निश्चित तिथि देखकर यह कह रहे हैं। अपने मानसपुत्रों को बिछड़ते समय का उपदेश दे रहे हैं। मानो इस नौका का यह निपुण नाविक, अब आप, विदा हुआ चाहता है। इसलिए यात्रियों ही को अखिल खेप सौंपकर, नौका खेने के लिए खेवट बना रहा है।

देहरादून में बहुतसे सज्जनों ने महाराज की फोटो लेने का आग्रह किया। वे पहले तो मानते ही न थे। कहते कि आज तक हमने किसी को अपनी प्रत्याकृति नहीं लेने दी। परन्तु लोगों के अत्यन्त अनुनय-विनय पर उन्होंने प्रत्याकृति उतरवाना स्वीकार कर लिया। कुंवरसिंह नाम के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति ने उनकी छवि ली। सिर पर साफे और गले में दुपट्टे वाली छवि देहरादून में ही ली गई थी।

स्वामीजी के चरणों में पं० लेखराम

पण्डित श्री लेखराम जी के हृदय में महाराज के दर्शनों की तीव्र लालसा उत्पन्न हो आई। वे, कुछ काल के लिए अपने सारे कामकाज छोड़कर, पंजाब से अजमेर जा पहुँचे। ज्येष्ठ व० ४ सं० १९३८ के प्रातः काल श्री सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने, भक्ति-भाव के भार से नम्रीभूत होकर, श्री चरणों में विनीत नमस्ते निवेदन किया। उनके प्रेम-रस से रसीले, विमल लोचनों को, मधुर मुखमण्डल को, शोभाशाली विशाल ललाट को और पतित-पावनी परम पवित्र आकृति को अवलोकन कर, आर्य धर्म वंश के सुवीर सुपूत को अतिशय प्रसन्नता उपलब्ध हुई। वे मार्ग की सारी थकान तत्काल भूल गये। वे अतृप्त लोचनों से स्वामी जी के सुन्दर स्वरूप को देखने लगे। उन्होंने स्वामी जी से अपनी सारी शंकाओं का निराकरण किया।

योग बल का प्रताप

एक दिन पश्चिमी विज्ञान का एक धुरन्धर पण्डित स्वामी जी के निकट आया। वह योग की सिद्धियों को भ्रममूलक मानता था। उसने योग विभूतियों के विषय में पूछा कि क्या आप इनको मानते हैं ? स्वामी जी ने योग-सिद्धियों को सिद्ध करते हुए कहा कि क्या आप समझते हैं कि मेरा इतना बड़ा काम बिना योग-सिद्धि के ही हो रहा है। इतने ही शब्दों से, उसका वज्रसदृश कड़ा मन पिघलकर मोम सा नर्म हो गया और उसे आर्यसमाज से प्रीति हो गई।

उन दिनों चित्तौड़ में बड़ी चहल-पहल थी। लाट रिपन महोदय की वहां राज-सभा लगने वाली थी। इसलिए उदयपुर के अन्तर्गत जितने भी राजे

और ठाकुर थे सब अति सजधज से वहां एकत्र हो रहे थे। मेवाड़ राज्य की सारी शोभा, अतिशय तड़क-मड़क की वेश-भूषा में वहाँ शोभायमान थी। श्रीयुत राणा सज्जनसिंह जी, अपने स्वजन समूह और कर्मचारी वर्ग-सहित सुशोभित थे।

स्वामी जी का सत्संग प्रतिदिन सायंकाल लगा करता। उसमें मेवाड़ राज्य के प्रायः सभी राजे जाते, श्री-दर्शनों और उपदेशों से लाभ उठाते।

एक सज्जन ने स्वामी जी से निवेदन किया—"भगवन्! पातंजल-शास्त्र का विभूति-पाद क्या सच्चा है?" उन्होंने कृपा की, "आप यों ही सन्देह करते हैं। योग-शास्त्र तो अक्षरशः सत्य है। वह कोई पुराणों की सी कल्पना नहीं है, किन्तु क्रियात्मक और अनुभव-सिद्ध शास्त्र है। दूसरी विद्याओं में उत्तीर्ण होने के लिए, आप लोग कई वर्ष व्यय करते हैं। इसके लिए यदि आप तीन मास तक मेरे पास निवास करें और मेरे कथनानुकूल योग-क्रियायें साधें तो आप, इस शास्त्र की सिद्धियों का साक्षात् स्वयं कर लेंगे।"

राजाओं का सुधार

स्वामी जी के पास गुजरात-काठियावाड़ और आगरा-अवध आदि प्रान्तों से निमन्त्रण-पत्र लगातार आते थे परन्तु उन्होंने देशीय शासकों को सुधारने के विचार से राजस्थान को प्रस्थान कर दिया। आषाढ़ सुदी ३ संवत् १९३९ को बम्बई से चलकर खण्डवा, इन्दौर, रतलाम और जावरा आदि नगरों में धर्मोपदेश करते हुए श्रावण सुदी ९ संवत् १९३९ को चित्तौड़ में सुशोभित हुए। चित्तौड़ से उदयपुर में पधारे। वहां वे नौ-लखा उद्यान में, एक सुन्दर धवलराज मन्दिर में—विराजमान हुए। उस समय उनके साथ रामानन्द ब्रह्मचारी, स्वामी आत्मानन्द जी और पण्डित भीमसेनी जी थे। दो-एक सेवक भी थे। जिस दिन महाराज ने अपने चरण-स्पर्श से उदयपुर को शोभा प्रदान की उसी दिन श्री राणा जी मन्त्रिमण्डल और पुरोहितों-सहित श्री-दर्शनों को आये। पुरातन आर्य राजाओं की भांति, राणा श्री सज्जनसिंह जी आगे-आगे पैदल चलते थे और उनके पीछे सैकड़ों लोगों की भीड़ चली आती थी। स्वामी जी के समीप जाकर श्री राणा जी ने अति नम्र नमस्कार किया और कुशल-प्रश्नोन्तर यथायोग्य आसन पर बैठ गए। कुछ काल तक वार्त्तालाप

करने के पश्चात् राणा जी आज्ञा लेकर चले आये।

राजस्थान में प्रचार

महर्षि दयानन्द जी के ऐतिहासिक जीवन का अन्तिम दृश्य बड़े भाव-भीने शब्दों में श्री पं० इन्द्रविद्यावाचस्पति ने "आर्यसमाज का इतिहास" नामक पुस्तक में खींचा है उसे हम उन्हीं के शब्दों में ही उद्धृत किए दे रहे हैं :—

उदयपुर में स्वामीजी १८८३ ईस्वी के फरवरी मास के अन्त तक रहे। मार्च के प्रारम्भ में आप शाहपुरा रियासत की राजधानी में पहुँच गए। शाहपुराधीश राजा नाहरसिंह जी स्वामीजी के भक्तों में से थे। उन्होंने बड़े भक्तिभाव से स्वागत किया। अपने विशेष बाग नाहरसिंह-निवास में स्वामीजी का आसन जमाया। प्रतिदिन वैदिक धर्म का प्रचार होने लगा। महाराज स्वयं प्रतिदिन सायंकाल ३ घंटे के लिए शिष्य भाव से आते थे, और अध्ययन करते थे। मनुस्मृति, योगदर्शन, वैशेषिक दर्शन आदि के आवश्यक भागों का महाराज ने पाठ समाप्त कर लिया।

स्वामीजी के उपदेशों से प्रेरित होकर महाराज ने महलों में एक यज्ञशाला बनवाई, जिसमें प्रतिदिन हवन कराने का संकल्प किया। मई मास के मध्य तक शाहपुरा में धर्मवृष्टि करके ऋषि १७ मई १८८३ को जोधपुर की ओर रवाना हुए। शाहपुरा से जोधपुर की ओर रवाना होते समय महाराजा नाहरसिंह ने स्वामीजी से कहा कि "महाराज, आप जोधपुर तो जाते हैं, परन्तु वहां वेश्या आदि का खण्डन न करना।" ऋषि ने उत्तर दिया कि "राजन्, मैं बड़े वृक्ष को नहेरने से नहीं काटता, उसके लिए तो बड़े शस्त्र की आवश्यकता होगी।"

जोधपुर में प्रचार

जोधपुर में कर्नल सर प्रतापसिंह और रा० रा० तेजसिंह आदि रईस ऋषि के शिष्य हो चुके थे। वे लोग देर से निमन्त्रण भेज रहे थे। अब समय पाकर ऋषि ने जोधपुर राज्य में भी सुधार का शब्द उठाने का संकल्प किया। शाहपुरा से आप अजमेर आए और वहाँ से जोधपुर के लिए रवाना हुए। अजमेर के आर्यपुरुषों ने ऋषि की सेवा में उपस्थित होकर फिर निवेदन किया

कि "अब आप मारवाड़ प्रान्त में पधारते हैं, वहाँ के मनुष्य प्रायः गंवार और उद्दण्ड हैं, और उनका स्वभाव और बर्ताव भी अच्छा नहीं है, इसलिए अभी आप वहाँ न जाइये।" ऋषि ने उत्तर दिया कि "यदि लोग मेरी उंगलियों की बत्तियाँ बनाकर जलाएं, तब भी मुझे कुछ शंका नहीं हो सकती। मैं वहाँ जाऊँगा और अवश्य वैदिक धर्म का प्रचार करूँगा।"

इस उत्तर को सुनकर सब चुप हो गए परन्तु एक सज्जन ने निवेदन किया कि "तथापि आप वहाँ सोच-समझ कर और मधुरता से काम लेना, कारण यह कि वहाँ के रहने वाले कठोर होते हैं।" इसका उत्तर ऋषि ने दिया कि ',मैं पाप के बड़े-बड़े वृक्षों की जड़ें काटने के लिए तीक्ष्ण कुठारों से काम लूंगा, न कि उन्हें बढ़ाने के लिए कैंचियों से उनकी कलम करूँगा।"

जोधपुर में स्वामीजी का भली प्रकार स्वागत हुआ। राजा जवानसिंह जी ने आवभगत की, पीछे से महाराज प्रतापसिंह और रा० रा० तेजसिंह आदि रईसों ने दर्शन किए और आतिथ्य का उचित प्रबन्ध किया। कुछ दिनों पीछे स्वयं जोधपुराधीश महाराज यशवन्तसिंह भी दर्शनों को आए। ऋषि ने उन्हें बहुत उपदेश दिया। प्रतिदिन सायंकाल के समय स्वामीजी सर्वसाधारण को धर्मोपदेश करते और फिर दो घंटे तक राजभवन में जाकर महाराज तथा उनके अन्य समीपवर्तियों की शंकाओं का निवारण करते। महाराज प्रतिदिन ऋषि से कुछ-न-कुछ सीखते थे। ऋषि ने अपने व्याख्यानों में मूर्ति-पूजा, वेश्यागमन, चक्रांकित सम्प्रदाय और इस्लाम का बड़े जोर से खण्डन किया। जोधपुर में यही त्रुटियाँ थीं। जोधपुर के पुजारी बड़े प्रचण्ड थे, महाराज और रईसों पर वेश्याओं का पूरा अधिकार था, रियासत में चक्रांकितों का जोर था, और राज्य के मुसाहिब आला भव्बा फैजुल्ला खां इस्लाम के खण्डन से बहुत क्षुब्ध हो गये थे। एक रोज उन्होंने स्वामीजी को यहाँ तक कह दिया कि यदि इस समय मुसलमानों का राज्य होता तो आप ऐसे व्याख्यान नहीं दे सकते थे और यदि देते तो जीवित नहीं रह सकते थे। स्वामीजी ने उसका उत्तर दिया कि "अस्तु कोई बात नहीं है। मैं भी उस समय दो क्षत्रिय राजपूतों की पीठ ठोक देता तो वह उन लोगों को अच्छी तरह समझ लेते।"

जोधपुर नरेश को फटकार

इस प्रकार जोधपुर में स्वामीजी के शत्रुओं की संख्या बढ़ रही थी। इस अवसर पर एक और घटना हो गई, जिसने विरोधियों के बल को बहुत बढ़ा दिया। महाराज यशवन्तसिंह का नन्हीं जान नाम की एक वेश्या से गहरा सम्बन्ध था। एक रोज अपने निश्चित समय के अनुसार स्वामीजी दरबार में पहुँचे। उस समय महाराज के पास नन्हीं जान आई हुई थी। स्वामीजी के आने का समय जानकर महाराज उसे डोली में रवाना कर रहे थे। डोली उठने से पूर्व ही स्वामीजी को समीप आता देखकर महाराज घबरा गए और डोली को स्वयं कन्धा लगाकर उठवा दिया। ऋषि ने यह देख लिया। इससे



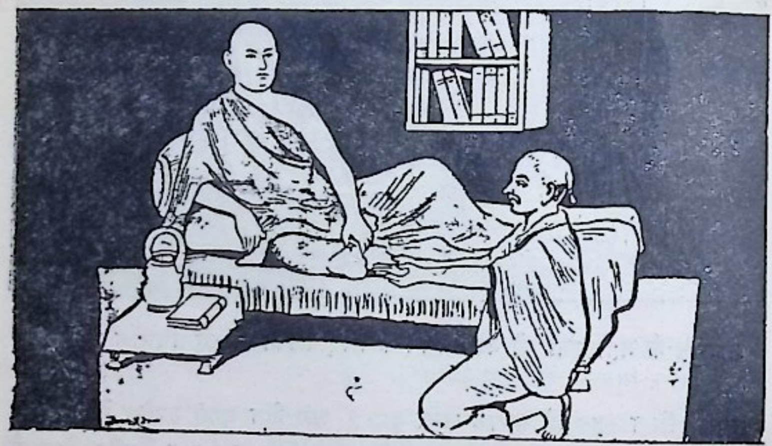
जोधपुर के महाराजा को वेश्यागमन के लिए फटकारते हुए निर्भीक दयानन्द

उनका चित्त बहुत ही अधिक क्षुब्ध हुआ। उस दिन अपने उपदेश में ऋषि ने राजधर्म का वर्णन करते हुए बताया कि राजा सिंह के समान है और वेश्याएँ कुतियों के समान। राजा का सम्बन्ध सिंहनियों से ही उचित है, कुतियों से नहीं। महाराज का सिर लज्जा से झुक गया और उन्होंने अपने सुधार

का निश्चय किया। नन्हींजान को जब यह समाचार मिला तो वह जल उठी। उसका क्रोध सीमा को पार कर गया।

रसोइये द्वारा दूध में घातक विष

२९ सितम्बर १८८३ ई० को रात के समय सोने से पूर्व स्वामीजी ने रोज के नियम से गर्म दूध मंगवा कर पिया। स्वामीजी का रसोइया जगन्नाथ नाम का एक ब्राह्मण था। दूध पीकर स्वामीजी सो गए। थोडी देर पीछे उनके पेट में दर्द उठा और जी मचलाने लगा। रात को कई बार वमन हुआ। स्वामीजी ने किसी को सूचना न दी परन्तु निर्बलता के कारण प्रातःकाल देर में उठे। और घूमने न जा सके। घर की शुद्धि के लिए आपने हवन की आज्ञा दी। हवन किया गया। स्वामीजी की दशा और अधिक खराब होने लगी। उदर शूल पेचिश और वमन का जोर बढ़ने लगा। डाक्टर सूर्यमलजी स्वामीजी के भक्त थे। पहले उनका इलाज प्रारम्भ हुआ परन्तु शीघ्र ही दरबार की ओर से डा० अलीमर्दानखाँ को भेजा गया। इलाज



अपने घातक जगन्नाथ पाचक को ५००)की थैली देते हुए ऋषि दयानन्द। दूर चले जाओ जगन्नाथ! ताकि मेरे भक्तों को तुम्हारे कुकृत्य का पता न लगे।

बहुत हुआ परन्तु दशा सुधरने की बात तो अलग प्रतिदिन दस्तों की संख्या बढ़ने लगी, शरीर बहुत ही कृश होने लगा। डा० अली मर्दानखां का इलाज बिलकुल उल्टा पड़ रहा था। इस घातक परिवर्तन की तह में डाक्टर की मूर्खता थी, या कोई गहरा भाव था—यह निश्चय पूर्वक कहने का इतिहास लेखक को तब तक कोई अधिकार नहीं जब तक कि किसी एक कल्पना की पुष्टि में कोई निर्विवाद युक्ति न दी जा सके। हाँ यह बात अवश्य सन्देहजनक है कि दशा तो बिगड़ रही थी और डाक्टर साहब यही बताते रहे थे कि दशा अच्छी हो रही है। ऋषि के शरीर में जहर घर कर गया था। डाक्टरों ने यही सम्मति दी थी कि रोगी को जहर दिया है। प्रतीत होता है कि कपटियों की प्रेरणा से जगन्नाथ ब्राह्मण ने रात को सोते समय दूध में जहर मिला कर पिला दिया था। कहा जाता है कि पता लगने पर इस आशंका से कि मेरे भक्त रसोइये को सतायें नहीं, दयालु ऋषि ने किराया देकर उसे नेपाल की ओर भाग जाने को कहा था।

दिव्य शक्ति

इतने कष्ट में भी ऋषि का धैर्य आश्चर्यजनक था। उसे देखकर मित्र और शत्रु दाँतों तले उंगली दबाते थे। इतना कष्ट और "आह" तक नहीं। धैर्य से रोग को सह रहे थे और पूछने पर केवल यथार्थ दशा बतला देते थे। शरीर छालों से भरा हुआ था, बोलने में असह्य कष्ट होता था, हिलना, डोलना भी कठिन हो रहा था, ऐसी दशा में भी ऋषि के मुंह पर न घबराहट थी और न खिझलाहट थी। वही गम्भीर चेहरा था और वही शांत मुद्रा थी। जिन लोगों ने उस दशा में स्वामी जी को देखा, उन्होंने अनुभव किया कि इस मनुष्य में अवश्य ही कोई दिव्यशक्ति काम कर रही है। उनके हृदयों पर यह बात अंकित हो गई कि इस महापुरुष के हृदय में निश्चय से परमात्मा की शक्ति निवास कर रही है।

आबू पर्वत की अन्तिम यात्रा

स्वामीजी की बीमारी का वृत्तान्त बहुत दिनों तक छिपा न रहा। अजमेर में समाचार पहुँचते ही आर्यपुरुष जोधपुर के लिए रवाना हुए और स्वामी

जी की यह दशा देखकर आश्चर्यचकित हो गए। रोग की दशा, इलाज की शिथिलता और सेवा की असुविधा देखकर आर्यपुरुषों ने ऋषि से आग्रह किया कि आप आबू पहाड़ पर चलें। ऋषि ने स्वीकार कर लिया। महाराज को सूचना मिलने पर पहले तो वे बहुत दुखित हुए परन्तु फिर स्वामी जी का आग्रह देखकर खिन्न मन से आदरपूर्वक विदाई का प्रबन्ध कर दिया। विदाई के समय स्वयं उपस्थित होकर रास्ते के आराम का भली प्रकार प्रबन्ध कर दिया। जोधपुर से डोले में स्वामी जी आबू पर्वत पर गए, परन्तु वहाँ भी कोई विशेष आराम दिखाई न दिया। तब स्वामी जी के शिष्य उन्हें अजमेर वापिस ले गए। इस यात्रा में उन्हें बहुत शारीरिक कष्ट हुआ परन्तु अच्छा इलाज करने की और स्वयं सेवा करने की शिष्यों की प्रबल इच्छा में बाधा डालना उन्होंने उचित न समझा। अजमेर में स्वामी जी को एक कोठी में ठहराया गया, और डा० लक्ष्मणदास जी का इलाज प्रारम्भ हुआ।

अन्तिम दृश्य

ऋषि का मृत्यु समय निकट आ रहा था। इलाज और सेवा कुछ परिवर्तन पैदा न कर सके। अन्तिम समय का दृश्य एक दर्शक की लेखनी ने जिन सरल शब्दों में चित्रित किया है, हम उससे उत्तम वर्णन नहीं कर सकते, इस कारण उसी को उद्धृत करते हैं :—

"रेल से उतार कर स्वामीजी को पालकी में लिटा दिया गया, और सावधानी से उन्हें एक कोठी में ले गए, जो पहले से इस काम के जिए नियत कर रखी थी। उस समय रात के तीन बजे थे। अक्टूबर का अन्त था, लोगों को सर्दी मालूम देती थी परन्तु स्वामीजी के मुँह से 'गर्मी, गर्मी" का शब्द निकलता था। कोठी के सब दरवाजे खुलवा दिए गए तब भी स्वामीजी को शान्ति न हुई। दूसरे दिन डा० लक्ष्मणदासजी का इलाज शुरू हुआ, पर उनकी दशा में कुछ भी अन्तर न हुआ। एक बार स्वामीजी ने अपने शिष्यों से कहा कि हमको मसूदा ले चलो, इस पर सबने कहा कि आराम होने पर हम आपको वहाँ पहुंचा देंगे, इस दशा में बार-बार यात्रा करना उचित नहीं है। इस पर स्वामीजी ने कहा कि दो दिन में हमको पूरा आराम पड़ जाएगा। वह उत्तर स्मरण रखने योग्य है। अब स्वामीजी के शरीर में छाले ही छाले दीखने लगे।

२९ अक्तूबर को स्वामीजी का शरीर अत्यन्त ही निर्बल हो गया। अपने सेवकों से कहा कि हमें बिठा दो। जब बिठाया गया तो कहा कि छोड़ दो, हमें सहारे की आवश्यकता नहीं है। सो कितनी देर तक बिना सहारे के बैठे रहे। उस समय सांस जल्दी-जल्दी चल रहा था पर स्वामीजी उसे रोक कर बल से फेंक देते थे, और ईश्वर के ध्यान में मग्न हो रहे थे। रात को कष्ट अधिक रहा। दूसरे दिन ३० अक्टूबर को डाक्टर न्यूमन साहब बुलाये गये। जिस समय उक्त डाक्टर साहब ने स्वामीजी को देखा तो बड़े आश्चर्य से कहने लगे कि धन्य है इस सत्पुरुष को, हमने आज तक ऐसा दिल का मज-बूत कोई दूसरा मनुष्य नहीं देखा कि जिसको इस प्रकार नख से शिख तक अपार पीड़ा हो और वह तनिक भी आह या ऊह न करे। उस समय स्वामी जी के कण्ठ में कफ की बड़ी प्रबलता थी, जिसकी निवृत्ति के लिए डाक्टर न्यूमन ने कई उपाय किए, परन्तु उनसे कुछ लाभ न हुआ। ११ बजे दिन के स्वामीजी का श्वास विशेष बढ़ने लगा, और कहा कि हम शौच जायेंगे। उस समय स्वामीजी को चार आदमियों ने उठाया, और शौच करने की चौकी पर बिठा दिया। शौच गए, और आप पानी लिया। हाथ धोये, दातुन की और कहा कि अब हमको पलंग पर ले चलो। आज्ञानुसार पलंग पर ला बिठाया। कुछ देर बैठकर फिर लेट गये। श्वास बड़े वेग से चलता था, और ऐसा प्रतीत होता था कि स्वामीजी श्वास को रोक कर ईश्वर का ध्यान करते हैं। उस समय स्वामीजी से पूछा गया कि "महाराज, कहिये, अब आपकी तबियत कैसी है ?" कहने लगे कि "अच्छी है, एक मास के पीछे आज का दिन आराम का है।"

"उस समय लाला जीवनदासजी ने, जो लाहौर से स्वामीजी को देखने अजमेर गये थे, स्वामीजी से अभिमुख होकर पूछा कि महाराज, "इस समय कहां हैं ?" स्वामीजी ने उत्तर दिया "ईश्वरेच्छा में।"

"इस समय श्रीयुत के मुख पर किसी प्रकार का शोक या घबराहट प्रतीत नहीं होती थी। ऐसी वीरता के साथ दुःख को सहन करते थे कि मुंह से कभी हाय या शोक नहीं निकला। इसी प्रकार स्वामीजी को बातचीत करते-करते पाँच बज गए, और बड़ी सावधानी से रहे। इस समय हम लोगों ने श्रीयुत से पूछा कि कहिये, अब आपकी तबियत कैसी है ? तो कहने लगे कि



"प्रभो ! तेरी इच्छा पूर्ण हो" कह दीपावली के दिन ऋषि दयानन्द ने देह त्याग दिया। गुरुदत्त सा नास्तिक भी मृत्यु-वेला में ऋषि की अपूर्व गरिमा देख आस्तिक बन गया। धन्य हैं ऋषिवर !

"अच्छी है, तेज और अन्धकार का भाव है। इस बात को हम कुछ न समझ सके क्योंकि स्वामीजी इस समय सरल बातचीत कर रहे थे। साढ़े पाँच बजे का समय आया तो हम लोगों से स्वामीजी ने कहा कि अब सब आर्यजनों को, जो दूर-दूर देशों से आये हैं, बुला लो और हमारे पीछे खड़ा कर दो। कोई सम्मुख खड़ा न हो, बस आज्ञा पानी थी, वही किया गया।

"जब सब लोग स्वामीजी के पास आ गये। तब श्रीयुत ने कहा कि चारों ओर के द्वार खोल दो और ऊपर की छत के दो छोटे-छोटे द्वार खोल दो। इस समय पाण्ड्या विष्णुलाल मोहनलाल भी श्रीमान् उदयपुराधीश की आज्ञानुसार आ गए। फिर स्वामीजी ने पूछा कौन-सा पक्ष है, क्या तिथि और क्या वार है? किसी ने उत्तर दिया कि कृष्ण पक्ष और शुक्लपक्ष की सन्धि अमावस मंगलवार है। यह सुनकर कोठी की छत और दीवारों की ओर दृष्टि करके, फिर पहले वेदमन्त्र पढ़े, तत्पश्चात् संस्कृत में ईश्वर की कुछ उपासना की, फिर भाषा में ईश्वर के गुणों का थोड़ा-सा कथन कर बड़ी प्रसन्नता और हर्ष सहित गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे, तत्पश्चात् हर्ष और प्रफुल्लित चित्त सहित कुछ देर तक समाधियुक्त नयन खोल यों कहने लगे कि, "हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है। तेरी यही इच्छा है। तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा! तैंने अच्छी लीला की!" बस इतना कह स्वामीजी महाराज ने, जो सीधे लेट रहे थे, स्वयं करवट ली और एक प्रकार से श्वास को रोक कर एक बार ही निकाल दिया।"

लेखक के शब्द सरल और अकृत्रिम हैं। ये शब्द बताते हैं कि दर्शकों के हृदयों पर उस तपस्वी की मृत्यु का गहरा असर हुआ। कहते हैं कि लाहौर के पं० गुरुदत्त विद्यार्थी भी लाला जीवनदासजी के साथ ऋषि के दर्शनों को गये हुए थे। पं० गुरुदत्त जी इससे पूर्व अर्धनास्तिक थे। विज्ञान के धक्के ने हृदय के ईश्वर-विश्वास को हिला दिया था। ऋषि की मृत्यु के दिव्य दृश्य को देखकर पंडित जी के कोमल हृदय पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। एक आस्तिक किस शान्ति से मर सकता है, यह देखकर गुरुदत्त का हृदय पिघल गया और जहाँ नास्तिकता के कारण शून्य हो रहा था वहाँ विश्वास और श्रद्धा का



अजमेर का वह भवन जहाँ महर्षि दयानन्द ने दीपमालिका के दिन अपने शरीर का त्याग किया था।

सुगन्धित पवन बहने लगा। जो अविश्वासी हृदय के साथ मरता है, उसे भविष्य में निराशा दिखाई देती है। जिसे ईश्वर पर भरोसा नहीं, उसके लिए मौत एक अथाह अंधेरी खाई है। जिसने जीवन में केवल आस्तिकता का दम्भ भरा हो, मृत्यु के समय उसके मुँह पर से पर्दा उठ जाता है और जो प्रत्यक्ष में सन्तुष्ट दिखाई देता था, वह असलियत में अशान्तिमय दिखाई देता है। मृत्युकाल सब पर्दों को उघाड़ देता है। उस समय कोई भाव छुपा नहीं रहता। ऋषि की मृत्यु बताती है कि उनका हृदय ईश्वर विश्वास और धार्मिक श्रद्धा से परिपूर्ण था। ऋषि का जीवन उज्ज्वल था, परन्तु मृत्यु उससे भी बढ़ कर थी। वह दिव्य थी। इस भूगोल पर ऐसे दृश्य कम दिखाई देते हैं। वह ऐसी मृत्यु थी जो नास्तिक हृदय के मरुस्थल में से भी आस्तिकता की सरस्वती को बहा सकती थी।

इस प्रकार दीपावली के दिन संसार का एक महान् पुरुष शांति का मार्ग-दर्शनकर धरती से विदा हो गया! उन के संदेश का प्रसार ही वस्तुतः उन के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है।

वेद-ज्ञान और महर्षि दयानन्द
की
सत्य सनातन विचार धारा
के
प्रसार-प्रचार हेतु सहयोग दीजिए

संसार अज्ञान अंधकार में भटक रहा है। विज्ञान और भौतिकवाद ने जीवन के सत्य को भुला दिया। ऐसे में सत्य, धर्म और शांति आनन्द के मार्ग की रक्षा महर्षि दयानन्द के दिव्य स्वप्न पूर्ण कर ही हो सकती है।

हमने 'जन-ज्ञान' द्वारा महर्षि का संदेश फैलाने और जन-जन तक वेद-ज्ञान का संदेश प्रसारित करने का संकल्प लिया है।

साधनों के अभाव में भी महर्षि के सच्चे अनुयायियों के बल और ईश्वर विश्वास के भरोसे हमारा संकल्प सस्ता-आकर्षक और आधुनिकतम वैदिक साहित्य देश विदेश की भाषाओं में प्रकाशित करना है।

हम चल पड़े हैं और बढ़ते जायेंगे। आपका जितना स्नेह, सहयोग हमें मिलेगा, हमारी गति उतनी ही तीव्र होगी। अत: इन पंक्तियों द्वारा प्रत्येक उस व्यक्ति से, जिसे वैदिक धर्म और महर्षि दयानन्द के महान् लक्ष्य से प्यार है हमारी प्रार्थना है कि "जन-ज्ञान" को पूरी शक्ति से सहयोग दीजिए।

१—जन-ज्ञान (मासिक) के ६) भेज कर सदस्य बनिए और इष्ट मित्रों को बनाइए।

२—साहित्य प्रकाशन के लिए जो कुछ भी सहायता दे सकें, दीजिए।

३—अधिक से अधिक साहित्य मँगाकर उसे वितरित कीजिए।

आर्यजन ! हमने कार्य आरम्भ कर दिया, आइए हमारे साथ, और साहित्य के अस्त्र से धरती का अज्ञान दूर कर 'जन-मन' पर 'ओ३म' पताका लहराने का व्रत लीजिए—

महर्षि का दिव्य स्वप्न पूरा करने के लिए हम आपसे सहयोग प्रार्थना कर रहे हैं—स्वीकार कीजिए

'जन-ज्ञान प्रकाशन',
१५९७, हरध्यानसिंह रोड
नई दिल्ली—५

विनीत
भारतेन्द्र नाथ
संचालक,

श्रद्धाँजलियाँ : महर्षि के चरणों में

महान् सुधारक



.........स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म के सुधार का बड़ा कार्य किया और जहाँ तक समाज सुधार का सम्बन्ध है, वह बड़े उदार-हृदय थे। वे अपने विचारों को वेदों पर आधारित और उन्हें ऋषियों के ज्ञान पर अवलम्बित मानते थे। उन्होंने वेदों पर बड़े-बड़े भाष्य किये, जिससे मालूम होता है कि उनका स्वाध्याय बड़ा व्यापक था।

—मैक्समूलर

दिव्य पुरुष सिंह

"ऋषि दयानन्द ने भारत के शक्ति शून्य शरीर में अपनी दुर्धर्ष शक्ति, अविचलता तथा सिंह-पराक्रम फूंक दिया है।"

ऋषि दयानन्द उच्चतम व्यक्तित्व के पुरुष थे। यह पुरुष सिंह उन में से एक था जिन्हें यूरोप प्रायः उस समय भुला देता है, जबकि वह भारत के सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाता है। किन्तु एक दिन यूरोप को अपनी भूल मान कर उसे याद करने के लिये बाधित होना पड़ेगा, क्योंकि उसके अन्दर कर्मयोगी, विचारक और नेता के उपयुक्त प्रतिभा का दुर्लभ सम्मिश्रण था। दयानन्द ने अस्पृश्यता व अछूतपन के अन्याय को सहन किया और उससे अधिक उनके अपहृत अधिकारों का उत्साही समर्थक दूसरा कोई नहीं हुआ। भारत में स्त्रियों की शोचनीय दशा को सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता व साहस से काम लिया। वास्तव में राष्ट्रीय भावना और जन जागृति के विचार को क्रियात्मक रूप देने में सबसे अधिक प्रबल शक्ति उसी की थी। वह पुनर्निर्माण और राष्ट्र-संगठन के अत्यन्त उत्साही पगम्बरों में से थे।

—रोमारोल

महान् प्रकाश स्तम्भ !



"मुझे एक आग दिखाई पड़ती है जो सर्वत्र फैली हुई है अर्थात् असीम प्रेम की आग जो कि द्वेष को जलाने वाली है और प्रत्येक वस्तु को जलाकर शुद्ध कर रही है। अमेरिका के शीतल मैदानों, अफ्रीका के विस्तृत देशों, एशिया के प्राचीन पर्वतों और युरोप के विशाल राज्यों पर मुझे इन सब को जलाने वाली और इकट्ठा करने वाली आग की ज्वालाएँ दिखाई देती हैं। इसकी चर्चा निम्नस्थ देशों से उठी है। अपने सुख और उन्नति के लिए इसे मनुष्य ने स्वयं प्रज्वलित किया है।

हिन्दू और मुसलमान इस प्रचण्ड अग्नि को बुझाने के लिए चारों ओर वेग से दौड़े परन्तु यह आग ऐसे वेग से बढ़ती गई कि जिसका इसके प्रकशक स्वामी दयानन्द को ध्यान भी न था और ईसाइयों ने भी जिनके मत की आग और पवित्र दीपक पहले-पहल पूर्व में ही प्रकाशित हुए थे, एशिया के इस नए प्रकाश के बुझाने में हिन्दुओं और मुसलमानों का साथ दिया, परन्तु यह ईश्वरीय आग और भी भड़क उठी और सर्वत्र फैल गई।

सम्पूर्ण दोषों का संघट्ट नित्य की शुद्ध करने वाली भट्टी में जल कर भस्म हो जायगा, यहाँ तक कि रोग के स्थान में आरोग्य झूठे विश्वासों की जगह तर्क, पाप के स्थान में पुण्य, अविद्या की जगह विज्ञान, द्वेष की जगह मित्रता, वैर की जगह समता, नरक के स्थान में स्वर्ग, दु:ख के स्थान में सुख, भूत प्रेतों के स्थान में परमेश्वर और प्रकृति का राज्य हो जायगा। मैं इस अग्नि को मांगलिक समझता हूँ। जब यह अग्नि सुन्दर पृथ्वी को नव जीवन प्रदान करेगी तो सार्वजनिक सुख, अभ्युदय और आनन्द का युग आरम्भ होगा।

यह आग एक भट्ठी में थी जिसे आर्यसमाज कहते हैं। यह भारतवर्ष के परम योगी दयानन्द के हृदय में प्रज्वलित हुई थी।"

—ऐन्ड्रयूज जेक्सन

स्वराज्य प्राप्ति के इच्छुक



"बहुत से धार्मिक तथा सदाचार सम्बन्धी कारणों के कारण हिन्दू परतन्त्र जाति बनी, उसका ऋषि दयानन्द ने खेद व्यक्त किया था। दयानन्द के प्रचार का मझे एक उद्देश्य दिखाई देता है—कि देश को स्वराज्य प्राप्त हो।"

न्यायमूर्ति जस्टिस पी० हेरीसन

श्री ऋषि चरणों में !

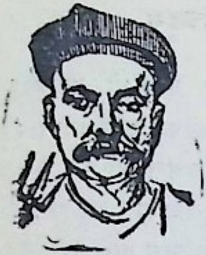


'ऋषिवर ! आपकी दिव्य मूर्ति मेरे हृदय-पट पर अब तक ज्यों की त्यों अंकित है। निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मनुष्य जान सकता है कि कितनी बार गिरते-गिरते आपके स्मरण-मात्र ने मेरी आत्मिक रक्षा की है। आपने कितनी गिरी हुई अत्माओं की काया पलट दी, इसकी गणना कौन मनुष्य कर सकता है ? परमात्मा के बिना जिनकी पवित्र गोद में आप इस समय विचर रहे हो, कौन कह सकता है कि आपके उपदेशों से निकली हुई अग्नि ने संसार में प्रचलित कितने पापों को दग्ध कर दिया है परन्तु अपने विषय में मैं कह सकता हूँ कि आपके सहवास ने मुझे कैसी गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा जीवन लाभ करने के योग्य बनाया।

मैं क्या था, क्या बन गया और क्या हूँ, यह सब आपकी कृपा का ही परिणाम है।

भगवान् ! मैं आपका ऋणी हूँ। उस ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ। इसलिए जिस परमात्मा की असीम गोद में आप परमानन्द का अनुभव करते हैं उसी से प्रार्थना कर रहा हूँ कि मुझे आपका सच्चा शिष्य बनने की शक्ति प्रदान करें।"

—श्रद्धानन्द सरस्वती



स्वराज्य के सर्वप्रथम संदेश वाहक

"ऋषि दयानन्द जाज्वल्यमान नक्षत्र थे जो भारतीय आकाश पर अपनी अलौकिक आभा से चमके और गहरी निद्रा में सोए हुए भारत को जागृत किया। "स्वराज्य" के वे सर्व-प्रथम सन्देश वाहक तथा मानवता के उपासक थे।' —लोकमान्य तिलक

आधुनिक ऋषियों में महान्

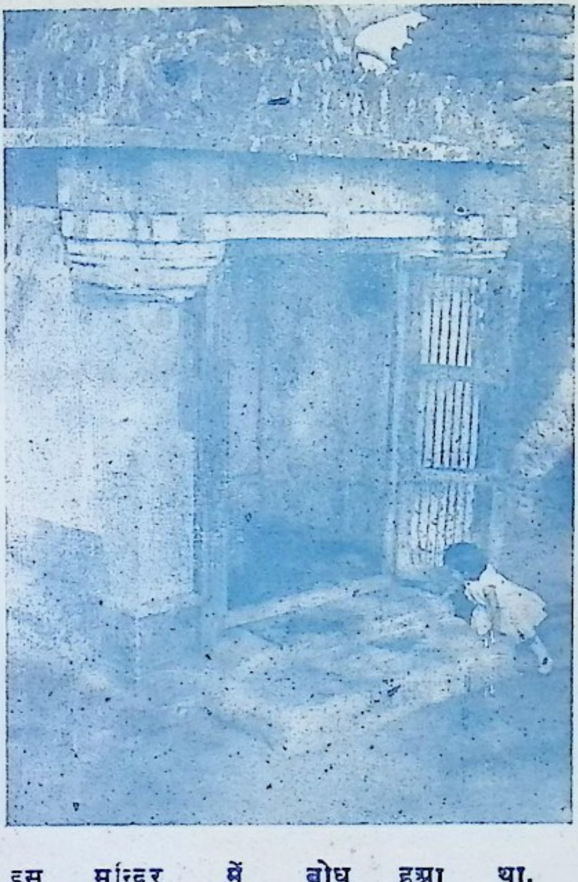
"महर्षि दयानन्द के विषय में मेरा मंतव्य यह है कि वह हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों, सुधारकों श्रेष्ठ पुरुषों में से एक थे। उनका ब्रह्मचर्य, विचार स्वतन्त्रता, सर्व-प्रति प्रेम, कार्य-कुशलता आदि गुण लोगों को मुग्ध करते थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत ही पड़ा है मैं जैसे-जैसे प्रगति करता हूँ, वैसे-वैसे मुझे महर्षिजी का बताया मार्ग दिखाई देता है। ब्रिटिश राज्य स्थापित होने के पश्चात् जनता के साथ सीधा सम्पर्क रखने का मार्ग महर्षि दयानन्द ने खोज निकाला। इस का यश महर्षि दयानन्द एवं उनकी आर्यसमाज को प्राप्त है। महर्षि दयानंद तथा उनकी आर्यसमाज ने प्रजा में नवचेतना पैदा की है। हिन्दू समाज की अनेक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया है। राष्ट्रीय शिक्षण, स्त्री शिक्षण तथा दलितोद्धार आदि न भुलाई जा सकें जैसी राष्ट्र महान, सेवा की हैं। मुझे आर्यसमाज बहुत ही प्रिय है। महर्षि दयानंद के इस पवित्र देशोपकारी कार्य कभी भी अपमान होगा तो मैं उसको महापाप समझूंगा।" —महात्मा गांधी

तपोमूर्ति



"महर्षि दयानन्द तपोमूर्ति थे। उन्होंने भारत में दिव्य ज्योति प्रकाशित की थी। उन्होंने हिन्दू समाज को पुनर्जन्म देने के सब प्रयत्न किये थे। वे भारत को स्वतन्त्र तथा दिव्य देखना चाहते थे। आर्षकाल को पुनः लाने के लिए वे प्रयत्नशील रहे। उन्होंने मृतप्राय हिन्दू जाति में पुनः प्राण संचार किया था। वे हिन्दू संस्कृति की अप्रतिम प्रतिमा तथा भारत माता के अक्षय पात्र थे।"

—महामना श्री मदनमोहन मालवीय



इस मन्दिर में बोध हुआ था,
'मूल' बन थे दिव्य विचारक इस मन्दिर में—
टंकारा' शुभ ग्राम धन्य है पावन मन्दिर,
जहां शान्ति का मूल मन्त्र जागा था।

'जन-ज्ञान' मासिक
१५९७, हरध्यान सिंह रोड,
नई दिल्ली–५

दिसम्बर १९६८

Regd. No.
D. 1631

अन्धकार में प्रकाश स्तंभ



महर्षि दयायन्द सरस्वती

जिन्हें शिवरात्रि के दिन बोध हुआ 'मैं कौन हूँ' का उन
करने का धरती का, मार्ग दर्शन कर दीपावली के दिन वे चले
आइए, हम उन की राह पर चलने का व्रत लें। सम